भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

Peer Reviewed, Refereed & Listed in UGC

ISSN 0973-9777
GISI Impact Factor 3.5628
वर्ष-११ अंक-३ & ४
मई & जुलाई २०१७

एम.पी.ए.एस.वी.ओ.
द्वारा आन्वीक्षिकी सदस्य
सहसंयोजन से प्रकाशित

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

वर्ष- ११ अंक- ३/४ मई/जुलाई- २०१७

शोध प्रपत्र

कर्त्तव्य शिक्षा : विवेकानन्द -डॉ0 मनोज कुमार अग्निहोत्री 1-3
सामाजिक यथार्थ अवधारणा और स्वरूप -डॉ0 रमा पद्मजा वेदुला 4-7

माधवी नाटक में स्त्री-विमर्श -डॉ0 नमिता जैसल 8-12
हिन्दी नवजागरण और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी -विजयलक्ष्मी 13-17

कर्मभूमि उपन्यास की आधुनिक युग में प्रासंगिकता : एक समीक्षा -पाल सिंह 18-22
''साहित्य सृजन की सशक्त अभिव्यक्ति मिथक'' -हरिकेश मीना 23-25

समकालीन कला -रवि प्रकाश सिंह 26-30
राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत भारतीय चित्र एवं चित्रकार -डॉ0 रश्मि शर्मा 31-33

दारा शिकोह के आध्यात्मिक विचार -डॉ0 स्मृति भटनागर 34-37
गुप्तकाल में धातु उद्योग -डॉ0 विजया तिवारी 38-39

मालेगाँव तहसिल में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' -प्रा0 खैरनार कैलास कारभारी 40-42
मध्यप्रदेश की दरबारी परम्परा -डॉ0 निधि श्रीवास्तव 43-44

''दुर्ग जिले में पिछड़े वर्गों की आरक्षण नीति से आम नागरिकों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन -डॉ0 प्रदीप कुमार भिमटे 45-52
हिन्दू विवाह : एक संस्थागत संस्कार के रूप में -एकता 53-56

योजनाओं से विलुप्त होतीं भावनाएं -श्वेता अग्रवाल 57-59
मालेगाँव के कपड़ा उद्योग में या0ना0 जाधव का कार्य -प्रा0 खैरनार कैलास कारभारी 60-63

भ्रष्टाचार : देश के लिए नासूर -डॉ0 सीमा रानी 64-66
महाकवि माघ का पाण्डित्य -विशाल पाण्डेय 67-71

रससिद्धान्त का इतिहास -अखिलेश नारायण मिश्र 72-74
निर्मल वर्मा कृत उपन्यास 'अन्तिम अरण्य' : एक अध्ययन -डॉ0 आशा वर्मा 75-87

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,1-3**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 26 अक्टूबर 2016

कर्त्तव्य शिक्षा : विवेकानन्द

डॉ० मनोज कुमार अग्निहोत्री*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *कर्त्तव्य शिक्षा : विवेकानन्द* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मनोज कुमार अग्निहोत्री* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

यह जान लेना आवश्यक है कि कर्तव्य क्या है? यदि मुझे कोई काम करना है तो पहले मुझे यह जान लेना चाहिए कि वह मेरा कर्तव्य है, और तभी से उसे कर सकता हूँ। विभिन्न जातियों में विभिन्न देशों में इस कर्तव्य के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न धारणाएँ है। एक मुसलमान कहता है कि जो कुछ कुर्रान–शरीफ में लिखा है, वही मेरा कर्तव्य है, इसी प्रकार एक हिन्दू कहता है कि जो कुछ मेरे वेदों में लिखा है, वही मेरा कर्तव्य है, फिर एक ईसाई की दृष्टि में जो कुछ उसकी बाइबिल में लिखा है, वही उसका कर्तव्य हैं। इससे हमें स्पष्ट दीख पड़ता है कि जीवन में अवस्था, काल एवं जाति के भेद से कर्तव्य के सम्बन्ध में धारणाएँ भी बहुविध होती हैं। अंन्यान्य सार्वभौमिक भावसूचना शब्दों की तरह कर्तव्य शब्द की भी ठीक–ठीक व्याख्या करना दुरूह है। व्यावहारिक जीवन में उसकी परिणति तथा उसके फलाफलों द्वारा ही हमें उसके सम्बन्ध में कुछ धारणा हो सकती है।

जब हमारे सामने कुछ बाते घटती हैं, तो हम सब लोगों में उस सम्बन्ध में एक विशेष रूप से कार्य करने की स्वाभाविक अथवा पूर्णसंस्कारानुयायी प्रवृत्ति उदित हो जाती है और प्रवृत्ति के उदय होने पर मन उस घटना के सम्बन्ध में सोचने लगता है कभी तो यह सोचना है कि इस प्रकार कि अवस्था में इसी तरह काम करना उचित है, फिर किसी दूसरे समय उसी प्रकार की अवस्था होने पर भी पूर्वोक्त रूप के कार्य करना अनुचित प्रतीत होता है। कर्तव्य के सम्बन्ध में सर्वत्र साधारण यही देखी जाती है कि सतपुरूषगण अपने विवेक के आदेशानुसार कर्म किया करते हैं।

परन्तु वह क्या है, जिससे एक कर्म कर्तव्य बन जाता है? जीने मरने की समस्या के समय एक ईसाई के सामने गो–मांस का एक टुकड़ा रहने पर भी यदि वह अपनी प्राणरक्षा के लिए उसे नहीं खाता अथवा किसी दूसरे मनुष्य के प्राण बचाने के लिए वह मांस नहीं दे देता तो उसे निश्चय ही ऐसा लगेगा कि उसने अपना कर्तव्य नहीं किया। परन्तु इसी अवस्था में यदि एक हिन्दू स्वयं वह गो–मांस का टुकड़ा खा ले अथवा किसी दूसरे हिन्दू को दे दे, तो अवश्य उसे भी ठीक उसी प्रकार लगेगा

* एस०एस० खन्ना महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : agni.mkumar@yahoo.com

© लेखक २०१७, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

कि उसने अपना कर्तव्य नहीं किया। हिन्दू जाति की शिक्षा तथा संस्कार ही ऐसे हैं, जिनके कारण उसके हृदय में ऐसे भाव जागृत हो जाते हैं।

पिछली शताब्दी में भारतवर्ष में डाकुओं का एक मशहूर दल था, जिन्हें उग कहते थे। वे किसी मनुष्य को मार डालना तथा उसका धन छीन लेना अपना कर्तव्य समझते थे। वे जितने अधिक मनुष्यों को मारने में समर्थ होते थे, उतना ही अपने को श्रेष्ठ समझते थे साधारणतया यदि एक मनुष्य सड़क पर जाकर किसी दूसरे मनुष्य को बन्दूक से मार डाले, तो निश्चय ही उसे यह सोचकर दुःख होगा कि कर्तव्य–भ्रष्ट हो उसने अनुचित कार्य कर डाला है। परन्तु यदि वहीं मनुष्य एक फौज में सिपाही की हैसियत से एक नहीं बल्कि बीसों आदमियों को भी मार डाले, तो उसे यह सोचकर अवश्य प्रसन्नता होगी कि उसने अपना कर्तव्य बहुत सुन्दर ढंग से निबाहा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि केवल किसी कार्य विशेष का विचार करने से ही हमारा कर्तव्य निर्धारित नहीं होता।

अतएव केवल बाह्य कार्यो के आधार पर कर्तव्य की व्याख्या करना नितान्त असम्भव हैं अमुक कार्य कर्तव्य है तथा अमुक अकर्तव्य कर्तव्य का इस प्रकार विभाग–निर्देश नहीं किया जा सकता।

परन्तु फिर भी आन्तरिक दृष्टिकोण (subjective side) से कर्तव्य की व्याख्या हो सकती है। यदि किसी कर्म द्वारा हम भगवान् की ओर बढ़ते हैं, तो वह सत् कर्म है और वह हमारा कर्तव्य हैं, परन्तु जिस कर्म द्वारा हम नीचे गिरते हैं, वह बुरा है, वह हमारा कर्तव्य नहीं। आन्तरिक दृष्टिकोण से देखने पर हमें यह प्रतीत होता है कि कुछ कार्य ऐसे होते हैं, जो हमें उन्नत बनाते हैं, और दूसरे ऐसे, जो हमें नीचे ले जाते हैं और पशुवत् बना देते है, किन्तु विभिन्न व्यक्तियों में कौन–सा कार्य किस तरह का भाव उत्पन्न करेगा, यह निश्चित रूप से बताना असम्भव हैं। सभी युगों में समस्त सम्प्रदायों और देशों के मनुष्यों द्वारा मान्य यदि कर्तव्य का कोई एक सार्वभौमिक भाव रहा है, तो वह है – ''परोपकार पुण्याय, पापाय परपीडनम्।''– अर्थात् परोपकार ही पुण्य है, और दूसरों को दुःख पहुँचाना ही पाप है।

श्रीमद्भागवद गीता में जन्मगत तथा अवस्थागत कर्तव्यों का बारम्बार वर्णन है। जीवन के विभिन्न कर्तव्यों के प्रति मनुष्य का जो मानसिक और नैतिक दृष्टिकोण रहता है, वह अनेक अंशों में उसके जन्म और उसकी अवस्था द्वारा नियमित होता है। इसीलिए अपनी सामाजिक अवस्था के अनुरूप एवं हृदय तथा मन को उन्नत बनाने वाले कार्य करना ही हमारा कर्तव्य है। परन्तु यह विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि सभी देश और समाज में एक ही प्रकार के आदर्श एवं कर्तव्य प्रचलित नहीं हैं। इस विषय में हमारी अज्ञता ही एक जाति की दूसरी के प्रति घृणा का मुख्य कारण है। एक अमेरिका निवासी समझता है कि उसके देश की प्रथाएँ ही सर्वोत्कृष्ट हैं, अतएवं जो कोई उसके अनुसार बर्ताव नहीं करता, वह दुष्ट है। इस प्रकार एक हिन्दू सोचता है कि उसी के रस्म–रिवाज संसार भर में ठीक और सर्वोत्तम हैं, और जो उनका पालन नहीं करता, वह महादुष्ट है। हम सहज ही इस भ्रम में पड़ जाते हैं, और ऐसा होना बहुत स्वाभाविक भी है। परन्तु यह बहुत अहितकर हैं, संसार में परस्पर के प्रति सहानुभूति के अभाव एवं पारस्परिक घृणा का यह प्रधान कारण है।

अतएव हमें जो एक बात विशेष रूप से ध्यान में रखनी चाहिए, वह यह है कि हम दूसरे के कर्तव्यों को उसी दृष्टि से देखें, दूसरों के रीति–रिवाजों को अपने रीति रिवाज के मापदण्ड से न जाँचे। यह हमें विशेष रूप से जान लेना चाहिए कि हमारी धारणा के अनुसार सारा संसार नहीं चल सकता, हमें ही सारे संसार के साथ मिल–जुलकर चलना होगा, सारा संसार कभी भी हमारे भाव के अनुकूल नहीं चल सकता। इस प्रकार हम देखते हैं कि देश–काल–पात्र के अनुसार हमारे कर्तव्य कितने बदल जाते हैं, और सब से श्रेष्ठ कर्म तो यह है कि जिस विशिष्ट समय पर हमारा जो कर्तव्य हो, उसी को हम भली–भाँति निबाहे। पहले तो हमें जन्म से प्राप्त कर्तव्य को करना चाहिए, और उसे कर चुकने के बाद, समाज–जीवन में हमारे 'पद' के अनुसार जो कर्तव्य हो, उसे सम्पन्न करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति जीवन में किसी अवस्था में अवस्थित है, उसके लिए पहले उसी अवस्थानुयायी कर्म करना आवश्यक है। मानव–स्वभाव की एक विशेष कमजोरी यह है कि वह स्वयं अपनी ओर कभी नजर नहीं फेरता। यह तो सोचता है कि मैं भी राजा के सिंहासन पर बैठने के योग्य हूँ। और यदि मान लिया जाए कि वह है भी, तो सब से पहले उसे यह दिखा देना चाहिए कि वह अपने वर्तमान पद का कर्तव्य भलीभाँति कर चुका है। ऐसा होने पर तब उसके सामने उच्चतर कर्तव्य आएँगे। जब संसार में हम लगन से काम शुरू करते हैं, तो प्रकृति हमें चारों ओर से धक्के देने लगती है और शीघ्र ही हमें इस योग्य बना देती है कि हम अपना वास्तविक पद निर्धारित कर सके। जो जिस कार्य के उपर्युक्त नहीं है, वह दीर्घकाल तक उस पद में रहकर सब को सन्तुष्ट नहीं कर सकता। अतएव प्रकृति हमारे लिए जिस कर्तव्य

का विधान करती है, उसके विरोध करना व्यर्थ हैं यदि कोई मनुष्य छोटा कार्य करे, तो उसी कारण यह छोटा नहीं कहा जा सकता। कर्तव्य के केवल ऊपरी रूप से ही मनुष्य की उच्चता या नीचता का निर्णय करना उचित नहीं, देखना तो यह चाहिए कि वह अपना कर्तव्य किस भाव से करता है।

फिर भी यह स्मरण रखना चाहिए कि कर्तव्य–ज्ञान से किया हुआ कर्म ही हमें कर्तव्य – ज्ञान से अतीत कर्म की ओर ले जाता है; और तब कर्म उपासना में परिणत हो जाता हैं– इतना ही नहीं, वरन् उस समय कर्म का अनुष्ठान केवल कर्म के लिए ही होता है। फिर हमें प्रतीत होगा कि कर्तव्य, चाहे वह नीति पर अधिष्ठित हो अथवा प्रेम पर, उसका उद्देश्य वहीं है, जो अन्य किसी योग का अर्थात् 'कच्चे मैं' को क्रमशः घटाते–घटाते बिल्कुल नष्ट कर देना, जिससे अन्त में 'पक्का मैं' अपनी असली महिमा में प्रकाशित हो जाए, तथा निम्न स्तर में अपनी शक्तियों का क्षय होने से रोकना, जिससे आत्मा अधिकाधिक उच्च भूमि में प्रकाशमान हो सके। नीच वासनाओं के उदय होने पर भी यदि हम उन्हें वश में ले आएँ, तो उससे हमारी आत्मा की महिमा का विकास होता रहता है। कर्तव्यपालन में भी इस स्वार्थत्याग की आवश्यकता अनिवार्य हैं। इसी प्रकार ज्ञान अथवा अज्ञानवश सारी समाजसंस्था संगठित हुई है, वह मानो एक कार्यक्षेत्र है – वह मानों एक कार्यक्षेत्र है – सत्–असत् की एक परीक्षाभूमि है। इस कार्यक्षेत्र में स्वार्थपूर्ण वासनाओं का धीरे–धीरे कम करते हुए हम मनुष्य की प्रकृति स्वरूप के अनन्त विकास का पथ खोल देते हैं।

कर्तव्य का पालन शायद ही कभी मधुर होता हो कर्तव्यचक्र तभी हल्का और आसानी से चलता है, जब उसके पहियों में प्रेमरूपी चिकनाई लगी होती है, नहीं तो यह निरन्तर एक घर्षण सा ही है। यदि ऐसा न हो, तो माता–पिता अपने बच्चों के प्रति, बच्चे अपने माता–पिता के प्रति, पति, अपनी स्त्री के प्रति तथा स्त्री अपने पति के प्रति अपना कर्तव्य कैसे निभा सकें? क्या इस घर्षण के उदाहरण हमें अपने दैनिक जीवन में सदैव दिखाई नहीं देते? कर्तव्यपालन की मधुरता प्रेम में ही है, और प्रेम का विकास केवल स्वतन्त्रता में होता है। परन्तु सोचो तो सही इन्द्रियों को क्रोध का ईर्ष्या का तथा मनुष्य के जीवन में प्रतिदिन होने वाली अन्य सैकड़ों छोटी–छोटी बातों का गुलाम होकर रहना क्या स्वतन्त्रता है? अपने जीवन के इन सब खुद संघर्षो में सहिष्णुता धारण करना ही स्वतन्त्रता की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है स्त्रियाँ स्वयं अपने चिड़चिड़े एवं ईर्ष्यापूर्ण स्वभाव की गुलाम होकर अपने पतियों को दोष दिया करती हैं। वे दावा करती है कि हम स्वाधीन है, परन्तु वे नहीं जानती कि ऐसा करने से वे स्वयं को निरी गुलाम सिद्ध कर रही है, और यही हाल उन पतियों का भी है, जो सदैव अपनी स्त्रियों में दोष देखा करते हैं।

कर्मफल में सासक्ति रखने वाला व्यक्ति अपने भाग्य में आए हुए कर्तव्य पर भुनभुनाता है। अनासक्त पुरूष को सब कर्तव्य एक समान है। इसके लिए तो वे कर्तव्य स्वार्थपरता तथा इन्द्रिय–परायणता को नष्ट करके आत्मा को मुक्त कर देने के लिए शक्तिशाली साधना हैं। हम अपने कर्तव्य पर जो भुनभुनाते हैं, उसका कारण यह है कि हम सब अपने को बहुत समझते हैं। हम अपने को बहुत योग्य समझा करते हैं, यद्यपि हम वैसे हैं नहीं। प्रकृति ही सदैव कड़े नियम से हमारे कर्मो के अनुसार उचित कर्मफल का विधान करती है, इसमें तनिक भी हेरफेर नहीं हो सकता। और इसलिए अपनी ओर से चाहे हम किसी कर्तव्य को स्वीकार करने के लिए भले ही अनिच्छुक हो, फिर भी वास्तव में हमारे कर्मफल के अनुसार ही हमारे कर्तव्य निर्दिष्ट होंगे। स्पर्धा से ईर्ष्या उत्पन्न होती है और उससे हृदय की कोमलता नष्ट हो जाती है। असन्तुष्ट तथा तकरारी पुरूष के लिए सभी कर्तव्य नीरस होते हैं। उसे तो कभी भी किसी चीज से सन्तोष नहीं होता और फलस्वरूप उसका जीवन दूभर हो उठता और असफल हो जाना स्वाभाविक है। हमें चाहिए कि हम काम करते रहें, जो कुछ भी हमारा कर्तव्य हो, उसे करते रहे, अपना कन्धा सदैव काम से भिड़ाये रखे। और तथी हमारा पथ ज्ञानलोक से आलोकित हो जाएगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

मजूमदार, श्री सत्येन्द्र नाथ –*विवेकानन्द चरित्र,* रामकृष्ण मठ, नागपुर
विवेकानन्द साहित्य – अद्वैत आश्रम मायावती अल्मोड़ा जन्मशती संस्कार,
विवेकानन्द स्वामी – कर्मयोग, रामकृष्ण मठ, धन्तोली नागपुर
पाण्डेय, राम सकल –*विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री,* विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
अन्वेशिका – रेडियन जर्नल आफ टीचर एजूकेशन।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,4-7**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 06 दिसम्बर 2016

सामाजिक यथार्थ अवधारणा और स्वरूप

डॉ० रमा पद्मजा वेदुला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *सामाजिक यथार्थ अवधारणा और स्वरूप अर्थ* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *रमा पद्मजा वेदुला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सामाजिक संरचना समाज के बाहरी ढांचे को संकेतित करती है तो सामाजिक व्यवस्था समाज के क्रियात्मक स्वरूप का उल्लेख करती है। समाज शब्द अपने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है इसके अन्तर्गत परिवार से लेकर राष्ट्र तक समाहित होते हैं। समाज की व्यवस्था कई खण्डों में विभक्त होती है अतः समाज एक अखण्ड व्यवस्था नहीं कहलाती। समाज के विभिन्न अंग संयुक्त होकर जिस ढांचे का सृजन करते हैं उसे ही सामाजिक संरचना कहा जाता है।[१] समाज के ए अंग जिन निर्धारित प्राकार्यों के आधार पर एक दूसरे से सम्बन्धित रहते हुए जिस संतुलन की वृष्टि करते हैं उसे ही सामाजिक व्यवस्था कहा जाता है।

पारसन्स के अनुसार, ''सामाजिक संरचना परस्पर सम्बन्धित संस्थाओं, ऐजेंसियों एवं सामाजिक प्रतीमानों, साथ ही समूह के प्रत्येक सदस्य द्वारा ग्रहण किये गये पदों और कार्यों की विशिष्ट क्रमबद्धता को कहते हैं।''[२]

मैकलिवर एवं पेज के अनुसार, ''समूह निर्माण के विभिन्न प्रकार संयुक्त रूप से सामाजिक संरचना के जटिल प्रतिमान को समाविष्ट कर लेते हैं, सामाजिक संरचना के विश्लेषण में सामाजिक जीवों की विभिन्न प्रवृत्तियाँ और हित व्यक्त होते हैं।''[३]

गिंसवर्ग के शब्दों में- ''सामाजिक संरचना का अध्ययन सामाजिक संगठनों के प्रमुख स्वरूपों अर्थात् समूहों, समितियाँ तथा विभिन्न संस्थाओं एवं इन सबकी जटिलताओं से सम्बन्धित है, जिनसे समाज का निर्माण होता है।''[४]

समाज

समाज का निर्माण करने वाले विभिन्न अंगों, घटनाओं अथवा तत्त्वों के अपने प्रकार्यों में व्यवस्थित रहते हुए सामाजिक व्यवस्था अपने अस्तित्व को बनाए रखती है। समाज अखण्ड व्यवस्था नहीं है। समाज के विभिन्न अंगों के अन्तर्सम्बन्धों

* हिन्दी विभाग, आचार्य नागार्जुन विश्वविद्यालय, गुनटूर (आन्ध्र प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक २०१७, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

से ही सामाजिक व्यवस्था का जन्म होता है। सामाजिक व्यवस्था का निर्माण स्थाई मानव क्रियाओं के अंतर्सम्बन्धों से होता है स्थाई मानव क्रियायें ही भूमिकाएँ कहलाती है। सामाजिक व्यवस्था की संरचना के अन्तर्गत उन भूमिकाओं को ग्रहण करने वाले व्यक्ति वृहद् सामाजिक व्यवस्था के अन्दर उपसमूहों के रूप में संगठित हो जाते हैं। इनमें कुछ उप समूह स्थाई हो जाते हैं। जैस परिवार को लिया जाता है तो परिवार की व्यवस्था में माता-पिता, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री आदि की भूमिकाएँ अन्तर्सम्बन्धों की एक स्थाई व्यवस्था है। अतः कहा जा सकता कि व्यक्तियों के उप-समूह के रूप में ''परिवार'' अनेक सदस्यों की अपेक्षा अधिक स्थाई होता है ''परिवार'' नामक ''उपसमूह'' का अस्तित्व स्थाई रूप से बना रह जाता है। समाज एक ऐसी सुसम्बन्ध व्यवस्था है, जिसके तत्त्व परस्पर एक दूसरे को प्रभावित नहीं करते है अपितु एक दूसरे से सम्बन्धित है। सामाजिक व्यवस्था समाज के विभिन्न अंगों में सन्तुलन बनाये रखती है, तथा इसी के माध्यम से समाज की अंतर्कियाओं को जाना जा सकता है

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज में घटित होने वाली हर घटना साहित्य के माध्यम से साकार रूप धारण करती है समाज के उतार चढ़ाव का सच्चा रूप रचनाकार अपनी रचनाओं के द्वारा समाज के सम्मुख रखने का प्रयत्न करता है हिन्दी साहित्य में दिखाई देता है कि भक्तिकाल के हिन्दी संत साहित्य के प्रवर्तक कबीर ने समाज के बाह्याडम्बर और दिखावे का यथार्थ का रूप १९वीं शदी में प्रखरता से साहित्य में उभर आया। आगे प्रेमचन्द ने आदर्श के साथ यथार्थ को अपनाया और सामाजिक गतिविधियों को अपने साहित्य का हिस्सा बनाया।

सामाजिक यथार्थ यथार्थवादी आन्दोलन के विकास की नव्यतम मंजिल है। पूँजीवादी समाज व्यवस्था की विरूपता से आक्रान्त, उसका निर्मम उद्घाटन करने तथा उसे अन्तर्मन से धिक्कारने के बावजूद भविष्य की उन रचनात्मक शक्तियों को देख पाने की आलोचनात्मक यथार्थवादियों की दृष्टि असमर्थता के कारण ही, जो पूँजीवादी व्यवस्था को ध्वस्त करते हुए नए और मंगलमय भविष्य को उजागर कर सके, समाजवादी समाज के साथ एक नए प्रकार की यथार्थ दृष्टि के उपस्थापन की आवश्यकता महसूस की गई इस नई यथार्थ दृष्टि को प्रस्तुत करते हुए उसके पुरस्कर्त्ताओं ने दावा किया कि वह न केवल आलोचनात्मक यथार्थवादियों की एकांगी तथा अपूर्ण यथार्थ दृष्टि की तुलना में मनुष्य समाज, जीवन तथा उसके यथार्थ को उनकी सम्पूर्णता में देखने और प्रस्तुत करने वाली है वरन् वह एक रचनात्मक दृष्टि भी है जिसमें भविष्य के नए और यथार्थवादी सृजन की महत्वपूर्ण भूमिकायें भी संलग्न हैं। सोवियत लेखकों की सन् १९३४ में हुई पहली कांग्रेस में ''मैक्सिम गोर्की ने सर्वप्रथम सामाजिक यथार्थ का नाम लिया।''[५] कालान्तर में समाजवादी यथार्थवाद को ही मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन के चिंतन के अन्तर्गत सर्वोच्च साहित्यिक एवं कलात्मक प्रतिमान के रूप में प्रतिष्ठा मिली।

सामाजिक यथार्थवादियों की मान्यता है कि लेखक समाज विकास की द्वन्द्वात्मक भूमिका को अपनाकर ही यथार्थ चित्रण की ओर अग्रसर हो। प्रसिद्ध मार्क्सवादी समीक्षक- ''राल्फ फाक्स'' ने अंग्रेज उपन्यासकार फील्डिंग का संदर्भ लेते हुए सामाजिक यथार्थ के चित्रणकर्ता के लिये कहा है कि उसे निरे वर्णन या आत्मसात विश्लेषण से नहीं, बल्कि परिवर्तन से कार्य कारण सम्बन्ध से संकट और द्वन्द्व से सरोकार रखना चाहिये।[६]

सामाजिक यथार्थवादियों का आग्रह है कि लेखक वस्तुगत यथार्थ को उसकी सम्पूर्णता में उभारकर प्रस्तुत करें। विरोधी शक्तियों के बीच चलने वाले संघर्ष को जितना ही विशदता, सजीवता तथा तीव्रता के साथ वह चित्रित करेगा, उस सघर्ष को जितने ही आयामों में वह देखेगा उसकी कला उतनी सम्पन्न होगी।

सामाजिक यथार्थ के अन्तर्मत मनुष्य के जिस यथार्थ पर बल दिया गया है, वह इसी सामाजिक प्राणी का यथार्थ है। वह व्यक्ति का यथार्थ भी है किन्तु तभी जब उसे साामाजिक प्राणी के रूप में मान्यता दी जाय। समाज सापेक्ष व्यक्ति का यह यथार्थ अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी यथार्थ के बीच में कृत्रिम विभाजन को मिटाने में सफलता प्रदान करना है। इस संदर्भ में ''राल्फ फॉक्स'' ने कहा है कि यथार्थ का चित्रण व्यक्ति के उस दुहरे संघर्ष की भूमि पर किया जाना चाहिये जो एक साथ ही अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी दोनों भूमिकाओं में अपने को समेट लें।''[७] प्रश्न यह है कि दुहरे संघर्ष का स्वरूप क्या है? ''फॉक्स राल्फ'' के शब्दों में- आज मानव हमारी समाज व्यवस्था के भरभराकर ढह जाने के साथ उत्पन्न होने वाली बाह्य वस्तुगत विभीषकाओं के खिलाफ, मशीन के प्रभुत्व के खिलाफ लड़ने पर बाध्य है। साथ ही,

उसे अपने मस्तिष्क के अंदर इन सब चीजों के मनोगत प्रतिबिम्ब के खिलाफ लड़ना है। उसे सभ्यता को बचाने के लिए और दुनिया को बदलने के लिये लड़ना है। ''इस संघर्ष में ही, जिसमें प्रत्येक पक्ष बारी-बारी से एक दूसरे को प्रभावित करता और एक दूसरे से प्रभावित होता है, अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी यथार्थवाद के पुराने तथा कृत्रिम विभाजन का अन्त होगा।[८]

समाज और साहित्य

साहित्य का निर्माण समाज करता है और समाज का निर्माण भी साहित्य करता है। साहित्य में समाज का चित्रण समाज के लिये किया जाता है। साहित्य से सम्बन्धी अनेक पक्षों का सीधा सम्बन्ध समाज से ही होता है। अतः साहित्यकार का सम्बन्ध समाज से बना रहता है सामाजिक विसंगतियाँ को ही साहित्य में प्रस्तुत किया जाता है।

साहित्य का सृजन किये जाने के पीछे सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ कारण बनतीं हैं; इसीलिये समाज अपनी अनेक परिस्थितियों के साथ अपनी सभ्यता और संस्कृति को साहित्य के माध्यम से हिफाजित किये रखता है। साहित्य के द्वारा समाज के भावों, विचारों क्रिया कलापों आशा-आकांक्षाओं, इतिहास संस्कृति परम्परा तथा जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। यही तथ्य साहित्य और समाज के बीच अनन्य सम्बन्ध स्थापित करता है। इसीलिये विद्वानों का कथन है कि साहित्य समाज का दर्पण है।[९] साहित्य शब्द 'सहित शब्द में 'यत्' प्रत्यय लगने से बना है। साहित्य का शब्द और अर्थ 'यथावत् स्वभाव' अर्थात् साथ होना। इस प्रकार का सार्थक शब्द मात्र का नाम साहित्य है। साहित्य की परिभाषा अत्यन्त विस्तृत है, इसमें मनुष्य की सारी बोधन शक्ति समाहित हो जाती है। सामाजिक कथनों से भरी होने पर भी कोई भी कृति साहित्यिक ही कहलाती है। साहित्य और समाज के सम्बन्ध की चर्चा करने से पूर्व हमें यह जानकारी लेने की आवश्यकता है कि जिस समाज की चर्चा[१०] लेखक, रचना, पाठक, परिवेश, वातावरण, संदर्भ परिस्थिति को केन्द्र में रखकर की जाती है उसका अपना स्वरूप क्या होना चाहिए? कोशों तथा विश्व कोशों में समाज के स्वरूप की विशेषताओं को निम्न प्रकार समझाया गया है :

१. समाज एक प्रकार की सामाजिक संस्था है जो सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर चलती है।
२. इस सामाजिक सम्बन्धों के निर्धारण तत्व व्यक्ति, परिवार, समूह, सम्प्रदाय और स्वयं समाज होता है।
३. समाज मानव समुदायों के विकास में सहयोग करता है तथा अपनी संरचना को निरन्तर परिवर्तित करता हैं।
४. समाज में रहकर ही व्यक्ति सामाजिक प्राणी बनता है क्योंकि समाज ही उसे दो ऐसी वस्तुएँ प्रदान करता है। जिनकी एक सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य के लिये जीव पर्यन्त महत्व और उपयोगिता बनी रहती है- सामाजिक आचरण और सामाजिक स्वीकृति की भाषा।
५. समाज का सम्बन्ध उन पक्षों से भी होता है जिनके अनुशीलन से वह पतनशील तथा उन्नतिशील दोनों प्रकार के सामाजिक तथ्यों की पहचान कर पाता है।
६. समाज हमेशा प्रगतिशील तत्त्वों के साथ होता है वह उन परम्पराओं, रीतियाँ और रूढ़ियों को बदलने तथा समाप्त करने का यत्न करता है जो उसमें रहे लोगों के अवन्नति की ओर ले जाती है तथा उसका समर्थन करता है इन्हें उदारता प्रदान कर सकती है।
७. समाज का निर्माण कुछ सामाजिक प्रतिरूपों के आधार पर बनता है जिन्हें हम सामाजिक मूल्य या मान्यताएँ भी मानते हैं इनकी स्थापना, इनका विकास और समाप्ति भी समाज ही करता है।

इन बिन्दुओं बिन्दुओं से स्पष्ट है कि मनुष्य के लिये समाज और समाज के लिये मनुष्य का अस्तित्व असंदिग्ध है। इन्हें एक दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता। इसमें संदेह नहीं कि जिन साहित्यकारों को घोर व्यक्तिवादी तथा आत्मवादी तक माना जाता है उनकी रचनाओं में भी कहीं न कहीं समाज और साहित्य से सम्बन्धित अंश विद्यमान रहता है। साहित्य में रचनाकार भी सामाजिकता को यदि प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी न किसी रूप में अवश्य दिखाई देता है। साहित्य और समाज के सम्बन्धों का अध्ययन करने वाला शास्त्र ''साहित्य का समाजशास्त्र'' कहलाता है। सामाजिक यथार्थ के चित्रण का अध्ययन भी इसी का एक पक्ष है। साहित्य के समाजशास्त्र का मुख्य सम्बद्ध साहित्यिक उत्पादनों के वितरण एवं एक खास समाज में विनिमय से होता है। ''साहित्य और समाज अथवा साहित्य और सामाजिक जीवन

के अटूट एवं पारस्परिक संबंध का मूल कारण मनुष्य का सामाजिक होना है। साहित्य के स्वरूप समाज में उसकी स्थिति और उसके सामाजिक लक्ष्य के परिवर्तन के साथ समाज केसंदर्भ में साहित्य के अध्ययन की दिशा एवं दृष्टि न बदलें।

संदर्भ

[१,२,३,४] शिव प्रसाद सिंह के कथा साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन -डॉ० टी०मीना कुमारी, पृष्ठ संख्या १८,१९
[५,६,७,८,९,१०]हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ संख्या ७५८, ७५९ एवं यथार्थवाद -शिव कुमार मिश्र, पृष्ठ संख्या ६८, ६९, ७१, ७२, ७३

सहायक ग्रंथ

कृष्णा सोवती -*हम दशम*
नरेन्द्र मोहन -*आधुनिक हिन्दी उपन्यास*
निर्मल वर्मा तथा अन्य कहानियाँ

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008 भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,8-12**
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777 प्रकाशनार्थ स्वीकृत 01 जनवरी 2017

माधवी नाटक में स्त्री-विमर्श

डॉ० नमिता जैसल*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *माधवी नाटक में स्त्री-विमर्श* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *नमिता जैसल* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

हर आदमी अपने जीवन का अर्थ जानना चाहता है। 'मैं हूँ'। मेरे होने का मकसद क्या है? मेरा इस भूमि पर जन्म लेने का उद्देश्य क्या है? जो भी मुझे जिन्दगी में करना है, वह क्या है। जब मानव ऐसे प्रश्न उठाता है तब उसके मन में आकांक्षाएँ उत्पन्न होती है। हर व्यक्ति की आशा होती है वह कुछ करे, कुछ बने अपना नाम रोशन करे ताकि उसे भी लगे समाज में उसका भी अस्तित्व है।

औरतों के मन में भी आकांक्षाएँ होती हैं लेकिन उनकी इच्छाओं को कोई नहीं जानता। क्यों? स्त्रियों को बचपन से ही सिखाया जाता है कि अपनी जरूरतों को भूले अपने बारे में न सोचे, उन्हें अपने लिए जीवन नहीं जीना है पर अपने अस्तित्व के बारे में सोचे बगैर दूसरों के लिए स्वाहा कर देना है।

भीष्म साहनी ने 'माधवी' नाटक में माधवी के माध्यम से एक स्त्री अपने अस्तित्व के बारे में सोचे बगैर अपने जीवन को कैसे स्वाहा कर देती है इसका सजीव एवं मार्मिक चित्रण किया है। साहनी जी एक ऐसे प्रश्न को उठाया है जिसे पहली बार जयशंकर प्रसाद जी ने 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में उठाया है। ध्रुवस्वामिनी कहती है कि ''आज यह फैसला हो जाये कि मैं कौन हूँ।''[१] अर्थात् स्त्री सिर्फ किसी की पत्नी, किसी की बेटी, किसी की माँ नहीं है। उसे भी एक अवसर चाहिए जिसमें वह मनुष्य के रूप में अपने अस्तित्व को पा सके, अपने को पहचान सके कि वह भी इसी समाज में रहने वाली है। लेकिन दु:खद स्थिति हमेंशा से ही रही है कि कमजोर होने की वजह से उसका दोहन किया गया है, उसका शोषण किया गया है, उसकी इच्छाओं और आकांक्षाओं को कोई नहीं समझता है।

साहनी जी ने 'माधवी' नाटक के द्वारा औरतों की समस्याओं का एकदम यथार्थ और सजग चित्रण किया है। पुरुष प्रधान समाज होने के कारण समाज में पुरुषों का शासन चलता रहा है। प्रस्तुत नाटक में भी यह दिखाने की चेष्टा की है कि माधवी का न तो अपने ऊपर कोई हक है और न ही अपनी भावनाओं, इच्छाओं को व्यक्त करने का मौका मिला है। उसे (माधवी) सिर्फ वस्तु के रूप में इस्तेमाल किया गया है, एक साधनमात्र समझा गया है। जिसके कारण वह अपने पिता और

* (पोस्ट डॉक्टोरल फेलो) हिन्दी विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक २०१७, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

प्रेमी गालब के हाथों की कठपुतली बनकर रह जाती है।

सिमोन जी ने अपनी पुस्तक 'स्त्री उपेक्षिता' में कहा है कि– ''कहा जाता है कि औरत अपने बारे में नहीं सोच सकती और वही बन सकती है, जैसा पुरुष उसको आदेश देगा। इसका अर्थ यह है कि अनिवार्यत: पुरुष के लिए भोग की वस्तु है और इसके अलावा कुछ भी नहीं। वह पुरुष के सन्दर्भ में ही परिभाषित विभेषित की जाती है। वह आनुशंगिक है, अनिवार्य के बदले नैमित्तिक है, गौण है। पुरुष आत्म है, विषयी है। वह पूर्ण है, जबकि औरत बस 'अन्या' है।''[२]

माधवी एक ऐसी स्त्री का प्रतिनधित्व करती है जिसकी अपनी आकांक्षा का कोई अर्थ नहीं है। साहनी जी कहते हैं– ''धर्मग्रन्थों में स्त्री तुलना पृथ्वी के साथ की गयी है, जिस भाँति पृथ्वी संसार भर का बोझ वहन करती है, वैसी ही स्त्री भी दायित्वों का भार वहन करती है। उसकी शक्ति सेवा में है। पुरुष महत्वाकांक्षी होता है, पर स्त्री का प्रमुख गुण त्याग है, सेवा है।''[३]

जिन्दगी का एक कठोर सच यह है कि लोग अपना नाम कमाने के लिए दूसरों का दुरूपयोग करते हैं। या तो हम किसी का उपयोग करते है या कोई हमारा उपयोग करता है। माधवी का भी उपयोग उसके पिता (ययाति) प्रेमी (गालव) यश कमाने के लिए करते हैं। साहनी जी इस सामाजिक असमानता को स्पष्ट रूप से दिखाते हैं।

मुनि कुमार गालव गुरु विश्वामित्र का शिष्य है। गुरु के द्वारा दक्षिणा न माँगने पर भी गालव अपने गुरु से दक्षिणा देने के लिए हठ करता है कि वह देगा। गालव का गुरु–दक्षिणा के लिए बार–बार हठ करते हुए देख विश्वामित्र ने दक्षिणा में आठ सौ अश्वमेधी घोड़े की माँग करते हैं। यह कोई सामान्य माँग नहीं है क्योंकि समस्त आर्यावर्त में आठ सौ अश्वमेधी घोड़े दुर्लभ ही नहीं है बल्कि आठ सौ ऐसे घोड़े पाना असम्भव है। गालव अपनी गुरु दक्षिणा के लिए दर–दर भटकता है लेकिन उसे घोड़े मिलने की बात तो दूर है। उसे यह तक पता चल नहीं पाता है कि ऐसे घोड़े है कहाँ। ऐसे कठिन हालात में गालव आत्महत्या करने जाता है तो कोई (गरुड़देव) गालव को सलाह देते हैं वह ययाति के पास जाये। ययाति के बारे में कहा जाता है कि ''वह बड़े दानवीर है। उनकी ख्याति देश–देशान्तर तक फैली है। उनके द्वार से कभी कोई अभ्यर्थी खाली हाथ नहीं लौटा।''[४]

गालव गरुड़देव की सलाह को मानते हुए ययाति के आश्रम में पहुँचता है और अपनी समस्या को ययाति के सम्मुख प्रस्तुत करता है। ययाति गालव की बात सुनकर हैरान और चिंतित हो जाते हैं। लेकिन कुछ समय सोचने के बाद वे गालव के समक्ष एक विचित्र प्रस्ताव रखते हैं– ''सुनो गालव, मैं तुम्हें आठ सौ अश्वमेधी घोड़े तो नहीं दे सकता, पर मैं अपनी एकमात्र कन्या तुम्हें सौंप सकता हूँ। वह बड़ी गुणवती लड़की है। उसे पाकर तुम्हें कोई भी राजा आठ सौ अश्वमेधी घोड़े दे देगा। निश्चय ही तुम अपना वचन निभा पाओगे।''[५] साथ ही वे गालव को बताते है कि माधवी को देवताओं के दो वरदान प्राप्त है। पहला उसके गर्भ से पैदा होने वाला बालक चक्रवर्ती राजा बनेगा, दूसरा यह है कि माधवी को चिर कौमार्य का भी वरदान प्राप्त है। ऐसे लक्षणों वाली युवती पाकर कोई भी राजा धन्य हो जायेगा और तुम्हें घोड़े भी दे देगा। इसीलिए माधवी को दानस्वरूप साथ ले जाओ।

ययाति अपनी बेटी को अपने यश के लिए वस्तु समझकर लापरवाही से दान में देते हैं। ययाति दान में किसी वस्तु को दे सकते है लेकिन उन्हें अनुमति किसने दी कि किसी जिन्दा औरत को कैसे उसकी इच्छा पूछे बगैर दान कर सकते हैं। वे ऐसा करने के अधिकारी नहीं है फिर भी अपने यश के लिए ऐसा करने में जरा भी नहीं संकोचते हैं।

ययाति एक बार भी माधवी से यह पूछना आवश्यक नहीं समझते है कि वह गालव के साथ जाना चाहती है कि नहीं वह क्या चाहती है? फिर भी उसे अज्ञात आदमी के हाथों सौंप देते हैं। पर जब माधवी प्रश्न उठाती है कि ''मैं आपका अभिप्राय अभी नहीं समझी पिता जी, यह सब क्या हो रहा है?''[६] ययाति उस समय कहते हैं मैंने तुम्हे दानस्वरूप दे दिया है जिससे इस युग की प्रतिज्ञा पूरी होगी। माधवी को जब यह पता चलता है कि उसे दान में दे दिया गया है तब वह अपने पिता से पूछती है– ''आज माँ होती तो क्या वह भी मुझे इस तरह दान में दे देती?''[७] माधवी को उसका उत्तर नहीं मिलता। माधवी के इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए कोई भी बाध्य नहीं है क्योंकि ययाति के लिए उनका धर्म, यश सर्वोपरि है। इस वक्त माधवी की इच्छा महत्वपूर्ण नहीं है। उसकी राय लेना न लेना एक ही समान है वह न तो किसी के तीन में है न तेरह में। साहनी जी ने इस स्थिति से हमारे सामने समाज की विषमता को प्रकट किया है कि स्त्रियाँ ऐसे समाज में अपने स्वतंत्र विचार प्रकट नहीं कर सकती हैं। डॉ० रामचन्द्र तिवारी के शब्दों में ''माधवी के माध्यम से सदियों से पशुवत् जीवन व्यतीत करती

हुई भारतीय नारी की पीड़ा को प्रभावी ढ़ंग से प्रस्तुत किया गया है।''[८] शृंखला की कड़िया में महादेवी वर्मा कहती हैं, ''....स्त्री न स्वातंत्र्यमर्हति' शास्त्र ने कहा है न। जिसके चरणों में उसका जीवन निवेदित है कि यदि वह उसे सन्दूक में बन्द बालक की गुड़िया के समान संसार की दृष्टि से, सूर्य की धूप और पवन के स्पर्श से बचाकर रखना चाहता है, तो नारी मानवी नहीं देवी है और देवताओं को मनुष्य के लिए आवश्यक सुविधाओं का करना ही क्या है? नारी के देवत्व की कैसी बिडम्बना है।''[९]

माधवी को अपने पिता जी के प्रति अपने कर्तव्य निभाने के नाम पर अपनी आकांक्षाओं और इच्छाओं का त्याग करना पड़ता है। लेकिन वास्तविकता यह नहीं है। माधवी अपना कर्तव्य निभाने नहीं जा रही है। उसके पिता ययाति अपने यश की लालसा के लिए भेज रहे हैं, ताकि लोग कहें कि वनों में रहते हुए भी ययाति दानवीर है, अपनी एकमात्र कन्या को भी दान में दे सकते हैं।

गालव जिससे माधवी प्रेम करने लगती है, वह भी अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए माधवी का इस्तेमाल करता है। गालव स्वयं से कहता भी है माधवी चक्रवर्ती राजा को जन्म देगी और मेरे भी चक्रवर्ती राजा बनने की सम्भावना है। गालव एक तरफ माधवी को स्वयं के लिए चक्रवर्ती राजा बनने का माध्यम समझता है तो दूसरी ओर माधवी को ऋण चुकाने वाली साधन निमित्त मात्र समझता है। गालव भी उसके पिता की तरह अपने आकांक्षाओं, सम्भावनाओं के बारे में सोचता है– ''चक्रवर्ती! चक्रवर्ती राजा को जन्म देगी। माधवी जिसे जन्म देगी वह चक्रवर्ती राजा बनेगा, ऐसा ही कहा महाराज ने। क्या माधवी के गर्भ से पैदा होने वाला गालव का पुत्र भी चक्रवर्ती राजा हो सकता है? चक्रवर्ती गालव। मेरे सामने सम्भावनाओं के कैसे प्रचार खुलने लगे है। माधवी को पाने का अर्थ है चक्रवर्ती राजा तक बन जाने की सम्भावना। .....और माधवी मेरे ऋण चुकाने का माध्यम है, इससे अधिक कुछ नहीं....कैसी बिडम्बना है, माधवी मेरे जीवन में साधन बनकर आयी है। उसके द्वारा मैं गुरु–दक्षिणा का दायित्व पूरा कर सकता हूँ.....उसी के द्वारा चक्रवर्ती राजा भी बन सकता हूँ।''[१०]

साहनी जी ने इस नाटक में गालव के माध्यम से पुरुष की दोहरी मानसिकता, स्वार्थी रूप का सजीव चित्रण किया है। जो सिर्फ अपने आकांक्षाओं इच्छाओं के सोचने के अलावा किसी और की इच्छा को व्यक्त करने और जानने का मौका भी नहीं देते हैं।

गालव अपनी जिद पूरा करने के लिए माधवी को अतरंज के मोहरे की तरह बार–बार दांव पर लगाता है। माधवी का राजाओं के रनिवास में रहने से पहले राजा के सामने आकर जिस प्रकार ज्योतिष उसे चलाकार बातचीत का लम्बाई, चौड़ाई, मोटापन, दुबलापन आदि के विषय में अपनी धारणाएँ बताते हैं तो, उसे पढ़कर हमारे मन में निश्चय ही दास–प्रथा के समय बिकने वाली दासियों की याद आती है। स्त्री उपेक्षिता में स्त्री–पुरुष सम्बन्ध की तुलना गुलाम–मालिक के साथ की गयी है। सीमोन द वोउवार ने कहा है कि ''मालिक और गुलाम के सम्बन्ध में मालिक के पास यह ताकत है कि वह अपने कार्य के माध्यम से अपनी जरूरत पूरी करने की क्षमता रखे, जबकि गुलाम मालिक की परिस्थिति पर निर्भर करता है, उसकी खुशी और आशा पर।''[११]

'माधवी' नाटक के माध्यम से साहनी जी ने समाज का सही और ईमानदार रूप हमारे सामने प्रस्तुत किया है। हमारे समाज में आज भी पुत्र प्राप्ति की लालसा आज भी विद्यमान है। साहनी जी कहते हैं– ''शास्त्रों में कहा गया है कि जिस राजा को पुत्र लाभ नहीं होता, वह राजा रंक के समान है। वह राजा इहलोक और परलोक दोनों खो बैठता है। वंश को आगे ले जाने वाला सत्ता और सम्पत्ति का उत्तराधिकारी, पितरों की आराधना करने वाला, बाप–दादा के यश को और अधिक उज्जवल बनाने वाला पुत्र ही है। देवियों और भद्रपुरुषों उसी घर की, परिवार की, राज्य की गाड़ी चलती है। इसीलिए शास्त्रों में कहा है कि जिसके पुत्र नहीं वह राजा रंक के समान है।''[१२]

इसीलिए माधवी भी राजाओं की दृष्टि में एक चक्रवर्ती राजा को जन्म देने वाली माध्यम थी इसके अलावा और कुछ भी नहीं थी। माधवी जब तक अपने बच्चे को जन्म नहीं दी रहती है तब तक गालव के बारे में ही सोचती रहती है। लेकिन बच्चे को जन्म देने के बाद माधवी को अपने बच्चे को छोड़कर आना बहुत कठिन था, फिर भी वह अपने बच्चे को राजा के पास छोड़कर चली आती है। गालव चाहता है कि माधवी अपनी इच्छाओं और वात्सल्य भाव को दुर्बलता समझकर अपने बच्चे को यंत्र की तरह भूल जाये गालव कहता है– ''इसलिए आयद स्त्रियाँ जोखिम के काम नहीं कर सकती है, किसी बड़े काम का

दायित्व वदन नहीं कर सकती।''[१३]

गालव के इस विचार को जानकर प्रश्न यह उठता है कि असल में दुर्बल कौन है? जो गुरु दक्षिणा के न देने पर आत्महत्या करने वाला गालव या जो आकांक्षाओं और इच्छाओं के त्यागने के बाद किसी अज्ञात आदमी के कर्तव्य को पूरा करने के लिए स्वयं को स्वाहा कर देने वाली माधवी। माधवी गालव से पूछती है– ''तुम ऋण मुक्त होने के लिए ये सब प्रयास कर रहे हो न? और मैं।''[१४]

माधवी सोचती थी कि गालव की गुरु–दक्षिणा पूरी हो जाने पर वे दोनों स्वतंत्र होकर जहाँ चाहे साथी बनकर जीवनयापन करेंगे। लेकिन ऐसा नहीं होता है। माधवी बार–बार वेदना झेलने के बाद, अपने बच्चों को त्यागने के बाद, जब वह सोचती है कि गालव उसे अपनाएगा, तो गालव चाहता है कि वह अनुष्ठान कर ले और अक्षत यौवन बन जाये। गालव माधवी को सिर्फ ऐसी ही स्थिति में स्वीकार करना चाहता है।

भीष्म साहनी जी गालव के द्वारा जीवन का एक कठोर सच दिखाते है। पुरुषों की दृष्टि में स्त्री एक देह से ज्यादा कुछ नहीं है। गालव की दृष्टि में भी माधवी का सौन्दर्य ही सब कुछ रहता है। वह जब तक सुन्दर आकर्षक लगती है तो उसे वह अपनी पत्नी के रूप में अपनाना चाहता है। लेकिन माधवी जब अनाकर्षक लगती है तो वह उसे पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं करता है बल्कि उसके प्रेम को ठुकरा देता है।

गालव अपने अशिष्ट आचरण के लिए बहाना बनाता है। यह सब जो हुआ मर्यादा–पालन था। इसीलिए हम दोनों तीखी धार पर चलते रहे पर सत्य यह है कि वे कर्तव्य की तीखी धार पर चलते रहे पर दूसरे को चलाते है.....'' और जैसे माधवी कहती है– ''यही तो बिडम्बना है। और संसार तुम्हें तपस्वी और साधक कहेगा, मेरे पिता को दानवीर कहेगा, और मुझे? चंचल वृत्ति की नारी, जिसका विश्वास नहीं किया जा सकता यही ना.....?''[१५] ऐसी स्थिति में माधवी अपने आप से सवाल करती है कि क्या ऐसे पुरुष के साथ जाना चाहिए, जिसने मुझे मनुष्य के रूप में नहीं देखा? माधवी अन्ततः गालव को समझ जाती है कि वह उसके लिए निमित्त मात्र थी। इसलिए अनाकर्षक लगने पर वह गालव की पत्नी नहीं बन सकती है। अनुष्ठान करके वह फिर से युवती तो बन सकती है, पर दिल से युवती नहीं बन सकती है। यह सब सोचकर माधवी गालव को ठुकरा देती है और गालव को स्वतंत्र कर देती है– ''मैं अब अनुष्ठान करना नहीं चाहती। जैसी हूँ वैसी ही रहना चाहती हूँ। तुम पूर्णतः स्वतंत्र हो, मैं तुम्हें बाँधकर नहीं रखूँगी। तुम निश्चिन्त हो जाओं, गालव, तुम सचमुच स्वतंत्र हो।''[१६] माधवी गालव से यह भी कहती है कि उसके पल्ले मैं बुढ़िया बाँध दूँगी। मेरा भी तुम्हारे प्रति कोई कर्तव्य है। प्रेम का भी एक कर्तव्य होता है।

माधवी तीन राजाओं के रनिवास में रहने के बाद जब उसे पता चलता है कि पूरे आर्यावर्त में कहीं भी अश्वमेध घोड़े नहीं बचे है जो थे भी बाढ़ आने की वजह से सारे घोड़े विश्वामित्र के आश्रम में चले गए है। माधवी गालव को बिना बताए गुरु विश्वामित्र के आश्रम चली जाती है और गालव माधवी को कोसते हुए कहता है– ''आखिर तो वह नारी है। नारी भगवान की ऐसी सृष्टि है कि जो अपनी कोमलता के कारण, सदा किसी न किसी का सहारा लिए रहती है। जैसे लता को वृक्ष का सहारा चाहिए? वैसे ही स्त्री को पुरुष का सहारा चाहिए।.....कौन जाने क्या हुआ? कौन जाने अपनी जान पर ही खेल गयी हो। क्या मालूम पिता के घर लौट गयी हो। कहा है कि स्त्री रहस्यों की गुथली होती है। उसे देवता नहीं समझ पाये तो मनुष्य क्या समझेगा। जो मनुष्य स्त्री को समझ पाया है समझिए कि वह संसार की सभी विद्याओं में पारंगत है।''

नाटक के अन्त में यह फैसला हो जाता है कि माधवी कौन है? वह सिर्फ दया की पात्र नहीं, वह सिर्फ गालव प्रेमिका और तमाम पुरुषों की पत्नी नहीं है। पूरे नाटक में माधवी का निर्णय कोई और लेता है। माधवी सिर्फ निभाती है और पूरा करती है। इस रूप में माधवी को पूरे नाटक में एक पूरक की तरह इस्तेमाल किया गया है। लेकिन माधवी जब यह समझ जाती है वह सिर्फ अपने पिता और गालव के लिए निमित्त मात्र है तो ज़िन्दगी द्वारा ठगी जाकर समाज द्वारा निर्धारित पथ का चुनाव नहीं करती। वह स्वयं को त्यागने वाले मार्ग का विरोध करती है और विद्रोह का रास्ता चुनकर कहती हैं– ''तुम भावुक हो रहे हो मुनिकुमार तुमने अपने कर्तव्य को पूरा किया, अब मुझे मेरा कर्तव्य पूरा करने दो। संसार बड़ा विशाल है, गालव, उसमें निश्चय ही मेरे लिए कोई स्थान होगा।''[१७]

प्रस्तुत नाटक में एक स्त्री की कहानी बतायी गई है। वह कैसे अपने अस्तित्व को खोजती है और अंत में कैसे पा लेती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

[१]प्रसाद, जयशंकर —*ध्रुवस्वामिनी,* लोकभारती प्रकाशन, संस्करण —२००९

[२]बोउवार, सीमोन —*स्त्री : उपेक्षिता* (अनुवाद) प्रभा खेतान, हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नवीन संस्करण, २००२, पृष्ठ संख्या २३

[३]साहनी, भीष्म —*माधवी,* राजकमल प्रकाशन, पुनर्मुद्रित —२००५, पृष्ठ संख्या ४१

[४]वही, पृष्ठ संख्या १२

[५]वही, पृष्ठ संख्या १७

[६]वही, पृष्ठ संख्या १८

[७]वही, पृष्ठ संख्या १९

[८]तिवारी, रामचन्द्र —*हिन्दी का गद्य—साहित्य,* विश्वविद्यालय प्रकाशन, सप्तम् संस्करण —२००९, पृष्ठ संख्या ३६५

[९]वर्मा, महादेवी —*श्रृंखला की कड़िया,* लोकभारती प्रकाशन, चतुर्थ लोकभारती, संस्करण —२००४, पृष्ठ संख्या ३९

[१०]साहनी, भीष्म —*माधवी,* राजकमल प्रकाशन, पुनर्मुद्रित —२००५, पृष्ठ संख्या २२

[११]बोउवार, सीमोन —*स्त्री : उपेक्षिता* (अनुवाद) प्रभा खेतान, हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नवीन संस्करण —२००२, पृष्ठ संख्या २३

[१२]साहनी, भीष्म —*माधवी,* राजकमल प्रकाशन, पुनर्मुद्रित —२००५, पृष्ठ संख्या ५०—५१

[१३]वही, पृष्ठ संख्या ५४

[१४]वही, पृष्ठ संख्या ५८

[१५]वही, पृष्ठ संख्या ९३

[१६]वही, पृष्ठ संख्या ९३

[१७]वही, पृष्ठ संख्या ९६

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,13-17**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 18 मई 2017

हिन्दी नवजागरण और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

विजयलक्ष्मी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *हिन्दी नवजागरण और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *विजयलक्ष्मी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य के गद्य व्यवस्थापक के रूप में हमारे सामने आते हैं। उन्होंने हिन्दी साहित्य को अनेकानेक विषयों की ओर उन्मुख किया, परन्तु वे गम्भीर विवेचक और शैलीकार न थे। उनके आलोचक रूप का पहला मूल्यांकन आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया। उन्होंने आलोचक के रूप में द्विवेदी जी के व्यक्तित्व को महत्व नहीं दिया। आचार्य द्विवेदी द्वारा लिखी गयी पुस्तकों की चर्चा करते हुए शुक्ल जी ने कहा- 'जो हो, इन पुस्तकों को एक मुहल्ले में फैली बातों से दूसरे मुहल्ले वालों को कुछ परिचित कराने के प्रयत्न के रूप में समझना चाहिए, स्वतंत्र समालोचना के रूप में नहीं।' शुक्ल जी ने द्विवेदी जी की पुस्तक समीक्षा को भाषा परिष्कार की दृष्टि से अवश्य महत्व दिया, विषय वस्तु के मूल्यांकन या विवेचन की दृष्टि से नहीं। शुक्ल जी ने लिखा है- 'यद्यपि द्विवेदी जी ने हिंदी के बड़े-बड़े कवियों को लेकर गम्भीर साहित्य समीक्षा का स्थायी साहित्य नहीं प्रस्तुत किया पर नयी निकली पुस्तकों की भाषा आदि की खरी आलोचना करके हिन्दी साहित्य का बड़ा भारी उपकार किया।'

आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी ने भी महावीर प्रसाद द्विवेदी को नवयुग का प्रवर्तक किया है, लेकिन वे भी उनके आलोचक रूप को अधिक महत्व नहीं देते। वाजपेयी जी लिखते हैं- द्विवेदी जी का व्यक्तित्व मूलत: सुधाकर और प्रवर्तक व्यक्तित्व है। उन्होंने समस्त प्राचीन को ताक पर रखकर नवीन अभ्यास और नए अनुभवों का रास्ता पकड़ा। हिंदी की किसी भी प्राचीन परम्परा के वे कायल न थे। संस्कृत से उनका प्रेम अवश्य था, पर उतना ही जितना नवीन हिंदी को स्वरूप देने के लिए आवश्यक था। इसीलिए द्विवेदी जी की शैली में पूर्णत: नवीनता के दर्शन होते हैं।'

डॉ० भगवत्स्वरूप मिश्र ने अपनी पुस्तक 'हिंदी आलोचना : उद्भव और विकास' में लिखते हैं- 'उन्होंने कवियों और जनता दोनों में ही सुरुचि जागृति करने का प्रयत्न किया और वे इस कार्य में पर्याप्त रूप से सफल भी हुए। द्विवेदी जी जैसे कठोर निरीक्षक के अभाव में रीतिकाल का गंदा नाला अब तक बहकर सारे साहित्य को आप्लावित कर देता। इस प्रकार द्विवेदी जी की आलोचना की मूल प्रेरणा सुरूचि और सत्साहित्य का निर्माण है।'

* शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक २०१७, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

'हिंदी आलोचना शिखरों का साक्षात्कार' नामक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में रामचन्द्र तिवारी आचार्य द्विवेदी का महत्व मात्र श्रृंगार या रीति-विरोधी आचार्य के रूप में ही नहीं मानते। वे लिखते हैं कि 'उनका महत्व उस वैज्ञानिक जीवन दृष्टि के स्वीकार के कारण है, जिसके आधार पर हिन्दी साहित्य नव-जागरण का अग्रदूत बनकर क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन का आधार प्रस्तुत करता है।'

वस्तुत: आचार्य द्विवेदी के आलोचक व्यक्तित्व को पहली बार उभरने वाले डॉ० रामविलास शर्मा हैं। उन्होंने आचार्य द्विवेदी के चिन्तन और लेखन को नवजागरण के आलोक में उभारा और प्रमाणित किया कि हिंदी नवजागरण की अपनी विशेषताएँ है और ये विशेषताएँ बंगाल और गुजरात के नवजागरण से भिन्न हैं। उन्होंने ही प्रतिपादित किया कि छायावादी साहित्य द्विवेदी युग के प्रति विद्रोह का साहित्य नहीं है वरन् वह महावीर प्रसाद द्विवेदी के ही कार्य की अगली कड़ी है। रामविलास शर्मा जी ने लिखा है- द्विवेदी जी की युगान्तकारी भूमिका यह है कि उन्होंने वैज्ञानिक ढंग से अनेक समस्याओं का विवेचन गहराई से किया।' उनकी दृष्टि में द्विवेदी जी अपने समय में सबसे बड़े बुद्धिवादी और वैज्ञानिक विचार पद्धति के समर्थक थे।

इस प्रकार डॉ० शर्मा के मूल्यांकन के बाद द्विवेदी जी की एक नयी प्रतिभा हिंदी जगत् में उभरकर सामने आयी। परन्तु हिंदी जगत् में इनके मूल्य और महत्व पर प्रश्न अब भी लगाये जाते रहे हैं।

कहा गया कि द्विवेदी जी ने व्याकरण के नियमों को इतना अधिक महत्व दिया कि सर्जनात्मक गद्य नहीं लिखा जा सका। आचार्य द्विवेदी के प्रभाव क्षेत्र के बाहर का साहित्य अधिक सर्जनात्मक है। आचार्य द्विवेदी की रचनाएँ न तो संवेदना की दृष्टि से मर्मस्पर्शी हैं और न ही स्थायित्व की दृष्टि से उनका कोई महत्व है। कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि यदि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को हिंदी साहित्य से अलग कर दिया जाय तो कोई फर्क नहीं पड़ता।

इन प्रश्नों पर विचार करते हुए हमें याद रखना चाहिए कि शुक्ल जी जैसा बड़ा और गम्भीर आलोचक भी महावीर प्रसाद द्विवेदी के महत्व को पूरी तरह से अस्वीकार नहीं कर सका। उन्होंने द्विवेदी जी की समीक्षा को गम्भीर न मानते हुए भी उनके महत्व को अविस्मरणीय माना और कहा कि 'गद्य की भाषा पर द्विवेदी जी के इस शुभ प्रभाव का स्मरण जब तक भाषा के लिए शुद्धता आवश्यक समझी जायेगी, तब तक बना रहेगा।' शुक्ल जी काव्य के क्षेत्र में भी द्विवेदी जी के महत्व को स्वीकार करते हैं, यद्यपि सच्ची और स्वाभाविक स्वच्छंदता के विकास में द्विवेदी जी के प्रभाव को बाधक माना है।

वस्तुत: आचार्य द्विवेदी का स्वयं का रचनात्मक साहित्य चाहे विशेष महत्व का न हो किन्तु 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप में उन्होंने जिस वैचारिक सांस्कृतिक आधारभूमि का निर्माण किया। उसका महत्व निर्विवाद है।

आचार्य द्विवेदी जी ने 'विक्रमांक देव चरित चर्चा', नैषध चरित चर्चा', 'कालिदास', कालिदास की निरंकुशता, जैसे- बड़े-बड़े निबंध लिखकर प्राचीन कवियों की कृतियों की आलोचना का सूत्रपात किया। प्राचीन कवियों के साहित्य के सम्बंध में चर्चा करना उस युग की प्रवृत्ति भी और इसके मूल में वही भारतीयता और गौरवमय अतीत के प्रति गर्व की भावना निहित थी। इसीलिए इन कवियों की आलोचनाएँ प्रशंसाओं से भरी दिखाई पड़ती हैं। अंग्रेजी साहित्य में पूर्ववर्ती कवियों की कृतियों पर अनेक आलोचना ग्रंथ पाये जाते हैं। हिंदी विद्वानों को यह कमी बार-बार खटकती थी।

द्विवेदी जी ने इसी आवश्यकता को भरने के लिए 'कालिदास की समालोचना', 'कालिदास की निरंकुशता', 'कालिदास की विद्वता', 'मेघदूत रहस्य', 'प्राचीन कवियों के काव्यों में दोषोद्भावना' आदि निबंध लिखे। इन सभी में कालिदास के उदात्त वैभव को दिखाया गया है।

परन्तु इन निबंधों में आलोचना सुलभ विश्लेषणात्मक प्रणाली का अभाव है, जिसमें ये सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और कलात्मक दृष्टियों से साहित्य की विभिन्न और सूक्ष्म से सूक्ष्म छवियों का आँकलन किया जाता है। कालिदास की कृतियों की आलोचना में भी द्विवेदी जी की नैतिक दृष्टि ही प्रमुख बनी रही। द्विवेदी जी काव्य का उद्देश्य उच्च नैतिक आनंद प्रदान करना मानते हैं, क्षणिक अस्थायी आनंद नहीं। काव्य में सुन्दर चरित्र की सृष्टि होनी चाहिए और यह सुन्दर चरित्र नैतिकता से अवश्यमेव सम्पृक्त होता है।

द्विवेदी जी का कहना है कि ''समुद्र के किनारे बैठकर अस्तगमनोन्मुख सूर्य की शोभा को देखना बहुत ही

आनंददायक दृश्य है... परन्तु उसके अवलोकन से क्षण स्थायी आनंद के सिवा दर्शकों और पाठकों का कोई हित-साधन नहीं हो सकता। उससे कोई शिक्षा नहीं मिल सकती। जिस दृष्टि से आमोद-प्रमोद के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं वह काव्य उत्कृष्ट नहीं।''

कालिदास की काव्यसृष्टि से पाठकों को एक सक्रिय आनंद की प्राप्ति होती है। उसमें देश, काल और पात्र के गुण और कार्य का सामूहिक और यथार्थ सौंदर्य चित्रित है, इसीलिए द्विवेदी जी को कालिदास महान कवि लगते हैं। जिस काव्य में शिक्षा तत्व का अभाव हो, वह कलात्मक और भावात्मक सौन्दर्य के उपरान्त भी द्विवेदी जी की दृष्टि में उच्च काव्य नहीं है। इसीलिए उन्होंने 'मेघदूत', 'विक्रमोर्वशीय' और 'मालविकाग्निमित्र' की अपेक्षा रघुवंश को अधिक श्रेष्ठ काव्य माना।

काव्य या साहित्य के संदर्भ में द्विवेदी जी की यह स्थूल नैतिकतावादी दृष्टि का समर्थन करना उचित नहीं कहा जा सकता। क्योंकि नैतिकता की कसौटी उपादेय होते हुए भी साहित्य में सब कुछ नहीं हो सकती। साहित्य का एक रूप वह भी होता है जहाँ नैतिकता का संकेत या तो बहुत सूक्ष्म रूप से होता है या बिल्कुल नहीं होता है। फिर भी वह साहित्य-पाठकों के हृदय को रस में निमग्न कर देने में समर्थ होता है। पाठकों की भावसत्ता को जो जितना अधिक समृद्ध कर सके उसे उतना ही श्रेष्ठ काव्य कहा जा सकता है। जिससे पाठक के हृदय का परिष्कार होता है और सौन्दर्य-बोध बढ़ता है। गीत काव्य इसी प्रकार के होते हैं, जिसमें नैतिकता या तो व्यंग्य के रूप में रहती है, या बिल्कुल नहीं रहती है। द्विवेदी जी बड़े निर्भीक और नवीन दृष्टि सम्पन्न समीक्षक थे। अनेक लोगों का विरोध और उपहास झेलते हुए भी उन्होंने कालिदास जैसे अपने श्रद्धेय कवि के दोषों का निर्भीक भाव से दिग्दर्शन कराया। हिन्दी समीक्षकों के लिए यह एक नवीन बात थी। आज तक श्रद्धेय कवियों के बड़े से बड़े दोषों को अनदेखा करने की परम्परा थी, उनकी अच्छी कृतियों का ही स्तवन किया जाता था। ऐसे में द्विवेदी जी ने कालिदास की भाषा सम्बंधी निरंकुशताओं को दिखाकर आलोचना के विश्लेषणात्मक स्वरूप की ओर संकेत किया। परन्तु यह संकेत मात्र ही था क्योंकि गुण-दोष की विवेचना एक साथ नहीं की गयी, बल्कि एक स्थान पर भूरि-भूरि प्रशंसा कर दी गयी और दूसरे स्थान पर दोषोद्घाटन। इस प्रकार यह प्रभावात्मक या प्रशंसात्मक आलोचना प्रणाली के ही अधिक नजदीक थी।

द्विवेदी जी रसवादी आलोचक होते हुए भी मर्यादित रसवाद के पोषक थे। 'रसज्ञ रंजन' में उन्होंने लिखा है- ''कवियों का यह काम है कि जिस पात्र अथवा वस्तु का वर्णन करते हैं उसका रस अपने अन्त:करण में लेकर उसे ऐसा शब्द स्वरूप देते हैं कि उन शब्दों को सुनने से वह रस सुनने वालों के हृदय में जागृत हो जाता है।''

द्विवेदी जी पिंगल शास्त्र के नियमों को कविता के लिए अनिवार्य नहीं मानते थे। उनके अनुसार पद्य के नियम एक प्रकार से बेड़ियाँ हैं, इनसे कवियों की स्वाभाविक उड़ान बाधित होती है। 'नाट्यशास्त्र' के कठोर नियमों के भी वे पक्षपाती नहीं थे। वे अपने 'नाट्यशास्त्र' में लिखते हैं कि ''ये जटिल नियम उस समय के हैं जिस समय भरत और धनंजय आदि ने अपने ग्रंथ लिखे हैं। अपने उद्धार दृष्टिकोण के कारण ही उन्होंने पाश्चात्य समीक्षा-प्रणाली से भी आवश्यक एवं उपयोगी गुणों को अपनाने में हिचकते नहीं हैं। अंग्रेज कवियों में वे वर्ड्सवर्थ से सर्वाधिक प्रभावित थे। 'लिरीकल वेलेड्स' की भूमिका में दिये गये सिद्धान्त के अनुरूप ही द्विवेदी जी ने गद्य-पद्य की भाषा के एक होने, छोटे विषयों पर काव्य-रचना करने तथा काव्य को अनुभूति प्रधान बनाने की बात कही।

द्विवेदी जी ने सैद्धान्तिक आलोचना पद्धति के तौर पर 'नाट्यशास्त्र' और 'रसज्ञ रंजन' की रचना की। हिंदी के कवियों या लेखकों के सम्बंध में द्विवेदी जी ने कोई विस्तृत या सुनियोजित सांगोपांग समीक्षा नहीं लिखी।

व्यावहारिक स्तर पर उनकी दो समीक्षाएँ प्रमुख हैं। 'हिंदी नवरत्न' की समीक्षा और 'आजकल के हिंदी कवि और कविता' शीर्षक से लिखी गयी छायावादी कवियों की समीक्षा।

द्विवेदी जी कृतियों के मूल्यांकन का स्पष्ट और वैज्ञानिक आधार चाहते थे। आलोचना में वे वैयक्तिक रूचि को नकारते हैं। मिश्र बन्धुओं ने 'हिंदी नवरत्न' में कवियों का चयन नितान्त वैयक्तिक रूचि के आधार पर किया है। इसी कारण उनके मन में कवियों की श्रेष्ठता को लेकर उहापोह है। मिश्रबंधुओं ने पहले 'हिन्दी नवरत्न' में कबीर को स्थान नहीं दिया था, परन्तु बाद में कबीरदास को भी 'हिंदी नवरत्न' में रखना उनको ठीक लगा। इसी कारण मतिराम और

भूषण को त्रिपाठी बंधु नाम देकर 'नवरत्न' नाम सार्थक रखा। इसमें कवियों का क्रम इस प्रकार है- तुलसीदास सूरदास, देव, बिहारी, भूषण, मतिराम, केशव, कबीर, चन्द और भारतेन्दु। परन्तु इनके क्रम निर्धारण का कोई वैज्ञानिक मूल्यगत आधार नहीं है। आचार्य द्विवेदी को इस पर आपत्ति थी। मिश्रबंधुओं ने देव को तुलसी और सूर की श्रेणी में रखा था तथा बिहारी और मतिराम को नवरत्नों में स्थान दिया था, द्विवेदी जी इससे भी सहमत नहीं थे। उन्होंने लखिा है- 'जिसने उच्च भावों का उद्बोधन नहीं किया, जिसने समाज, देश या धर्म को अपनी कविता द्वारा विशेष लाभ नहीं पहुँचाया, जिसने मानव चरित्र को उन्नत करने योग्य सामग्री से अपने काव्य को अलंकृत नहीं किया वह भी यदि महाकवि या कविरत्न माना जा सकेगा तो प्रत्येक देश क्या प्रत्येक प्रान्त में भी सैकड़ों महाकवि और नवरत्न निकल आयेंगे।'

अत: हम कह सकते हैं कि मिश्रबंधुओं तथा गुण दोष-निदर्शिनी तुलनात्मक आलोचना में तल्लीन अन्य समीक्षकों से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की समीक्षा दृष्टि नितान्त भिन्न है। वे उसी साहित्य को महत्वपूर्ण मानते हैं जिसमें उच्च भावों का उद्‌बोधन हो, जिसमें समाज और देशहित की भावना निहित हो और जिसमें मानव चरित्र के उन्नयन की क्षमता हो। यही कारण है कि वे अपने युग के एक विशिष्ट समीक्षक और युग निर्माता साहित्यकार के रूप में दिखाई पड़ते हैं।

छायावाद जैसे नवीन काव्यांदोलन की समीक्षा भी आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने की। रहस्यवादी प्रवृत्ति और आलम्बन के अमूर्तीकरण का खुले शब्दों में विरोध किया। आगे इसी आधार पर शुक्ल जी ने भी छायावाद की आलोचना की।

इस प्रकार आचार्य द्विवेदी अपने युग की सर्जनात्मक चेतना के प्रेरक, उन्नायक, विधायक एवं परिष्कारक के रूप में हमारे सामने आते हैं। उन्होंने खड़ी बोली के काव्यभाषा के विकास में अमूल्य योगदान दिया। खड़ी बोली का स्वीकार एक नवीन सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना का स्वीकार था। इसी चेतना का परिणाम था कि उन्होंने काव्य भाषा और गद्यभाषा की एकता की समर्थन किया। काव्य विषय के रूप में समग्र प्राकृतिक एवं मानवीय उपादानों के स्वीकार की बात भी द्विवेदी जी की खुली चेतना का ही परिणाम है। छंदों के प्रयोग में रूढ़ियों का त्याग और रीतिकाव्य विरोध के मूल में भी नवीन जीवन दृष्टि कार्य कर रही थी।

यह बात सच है कि द्विवेदी जी ने गम्भीर और स्थायी महत्व की व्यावहारिक समीक्षा नहीं लिखी, उनके निबन्ध 'नाटकों का संग्रह' मात्र प्रतीत हुए परन्तु उनके लेखन में नवीन सामाजिकमूल्य दृष्टि को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

यही कारण है कि डॉ० रामविलास शर्मा ने आचार्य द्विवेदी को प्राचीन भारतीय विवेकवादी परम्परा का पोषक, स्वाधीन चेतना का समर्थक और हिन्दी नवजागरण के तीसरे चरण का प्रतिष्ठापक प्रमाणित किया।

आचार्य शुक्ल 'आधुनिक शैली की आलोचना के लिए विस्तृत अध्ययन, सूक्ष्म अन्वेषण बुद्धि और मर्मग्राहिणी प्रज्ञा' की अपेक्षा करते थे। इसी संदर्भ में रामचन्द्र तिवारी अपनी पुस्तक में लिखते हैं- ''निश्चय ही कृति विशेष या प्रवृत्ति विशेष में निहित मुख्य-सौन्दर्य का विवेचन करने के लिए उपर्युक्त विशेषताएँ अनिवार्य हैं, लेकिन यदि पूरे युग के रचनाकर्म को दिशा देने के लिए वैचारिक आधार प्रस्तुत करना हो और पूरे युग के साहित्य-प्रवाह को एक व्यवस्थित लोकोपयोगी दिशा देनी हो तो वही करना होगा जो आचार्य द्विवेदी किया।''

वास्तव में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का उचित मूल्यांकन उपर्युक्त कथन के आलोक में ही किया जा सकता है। द्विवेदी जी ने विशिष्ट का विश्लेषण तो नहीं किया परन्तु सामान्य को विशिष्ट दिशा की ओर अग्रसर करके हिंदी साहित्य का बड़ा उपकार किया।

'हिन्दी आलोचना : प्रवृत्तियाँ और आधारभूमि' नामक अपनी पुस्तक में डॉ० रामदरश मिश्र द्विवेदी जी का महत्व इस प्रकार स्थापित करते हैं- ''द्विवेदी जी ने विषय का असीम विस्तार कर कविता के लिए नये-नये क्षेत्र तैयार किये और आलोचना की प्रकृति को उदार बनाया। कविता के नाम पर चले आते हुए खिलवाड़ों-अलंकारों के तमाशों, समस्या-पूर्तियों और नायिकाओं की नुमाइश का घोर विरोध किया और सामाजिक तथा साहित्यिक दोनों दृष्टियों से स्वस्थ प्रवृत्तियों का प्रवर्त्तन और पोषण किया।''

द्विवेदी जी ने अपने विश्वासों, अपनी मान्यताओं और युगानुरुप नयी संभावनाओं को अपने युग के अनेक नये कवियों और आलोचकों में उतार सके जिनका विकास परवर्ती युगों में होता गया।

संदर्भ ग्रन्थ

रामचन्द्र शुक्ल -*हिन्दी साहित्य का इतिहास*
नन्द दुलारे वाजपेयी -*हिन्दी साहित्य : बीसवीं सदी*
भगवत्स्वरूप मिश्र -*हिन्दी आलोचना : उद्भव और विकास*
डॉ० रामविलास शर्मा -*महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण*
रामचन्द्र तिवारी -*हिन्दी आलोचना : शिखरों से साक्षात्कार*
डॉ० रामदरश मिश्र -*हिन्दी आलोचना : प्रवृत्तियाँ और आधारभूमि*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008 भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,18-22**
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777 प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 जून 2017

कर्मभूमि उपन्यास की आधुनिक युग में प्रासंगिकता : एक समीक्षा

पाल सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *कर्मभूमि उपन्यास की आधुनिक युग में प्रासंगिकता : एक समीक्षा* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *पाल सिंह* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

प्रेमचन्द युग–दृष्टा उपन्यासकार थे। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में उनके युग का संपूर्ण जीवनचित्र साकार हो उठता है। कर्मभूमि भी उनकी एक ऐसी ही कृति है जिसमें उस युग के भारतीय जीवन के सभी पक्षों चाहे वह भारतीय स्वाधीनता संग्राम से सम्बद्ध हो या फिर शैक्षिक, अछूतोद्धार, साम्प्रदायिकता आदि को उन्होंने बड़े कौशल के साथ उजाकर किया है। अगर कर्मभूमि को उस युग के समूचे जीवन का साहित्यिक दस्तावेज कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नही होगी। कर्मभूमि मुंशी प्रेमचन्द जी द्वारा रचित सुप्रसिद्ध उपन्यास हैं। मुंशी प्रेमचन्द जी को उपन्यास सम्राट कहा जाता जो कि तर्कसंगत भी है मुंशी जी की किसी भी रचना की समीक्षा करना असम्भव चुनौती है और अपने–आप में एक उपलब्धि के समान है। कर्मभूमि उपन्यास का विश्लेषण करने की मेरी यह चेष्टा मात्र एक प्रयास ही है क्योंकि मुंशी जी द्वारा रचित उपन्यास की समीक्षा करना पर्वत पर चढ़ाई करने के समान है।

कर्मभूमि उपन्यास अपने आप में बहुत सारी विशेष बाते समेटे हुए है जो तत्कालिन समय में तो प्रांसागिक थी ही अपितु वर्तमान में भी प्रांसागिक है और वर्तमान समाज व सामाजिक पक्षों का प्रतिनिधित्व करता है। कर्मभूमि उपन्यास का अध्ययन करते समय हमने पाया कि मुंशी जी ने सामाजिक समस्याओं को उजागर किया है जैसे – छूआछूत की समस्या को उठाना, उसके नायक व पात्रों द्वारा ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को शिक्षा का महत्व बताना इसके अलावा सामाजिक जागरण, भूमिदान, श्रमदान व अतिथि सत्कार करना इत्यादि।

उपन्यास में विविध पक्षों का चित्रण मुंशी जी द्वारा किया गया है विभिन्न घटनायें और वार्तालाप इन्हें उद्घाटित करते है जैसे नायक अमर व उसके दोस्त सलीम का पाठशाला में पढ़ने जाना वहां पर ली जाने वाले फीस व अनावश्यक जुर्माना, उसके विरोध में छात्रों की स्थिति, सलीम का अमर की फीस भरना, लाला समरकान्त का पुत्र पर बिगड़ना और अमर व उसकी पत्नी का आपसी वार्तालाप, प्रो० शान्ति कुमार के नेतृत्व में अंग्रेज सिपाहिओं से भिड़ना आगे चलकर सुखदा का छूआछूत

* असिस्टेंट प्रोफेसर, सामाजिक विज्ञान विभाग, क्रीसेंट कॉलेज ऑफ एजुकेशन (भोडिया खेरा) फतेहाबाद (हरियाणा) भारत

© लेखक २०१७, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

के विरोध में आंदोलन करना व निम्न जाति के लोगों मन्दिर में प्रवेश करवाना। यही नहीं अमर का विलासी व प्रेमी रूप भी नजर आता है। अमर पहले सकीना और बाद में एकदम से मुन्नी के सामने प्रेम प्रस्ताव करता है। परन्तु इन सब पक्षों को गौण साबित करते हुए अमर का त्यागी व समाजसेवी रूप मुख्य तौर पर नजर आता है यही परन्तु कुछ भिन्न स्थिति सलीम की भी नजर आती है और आगे चलकर सलीम में अफसर शाही का गुण भी नजर आता है। अमर के पिता समरकान्त का लालची, मेहनती, व्यवहार और पुत्र मोह परिवार कल्याण साहूकारी रूप और एक धार्मिक सामाजिक प्राणी का रूप इत्यादि सामने आते हैं। इसके अतिरिक्त सुखदा, नैना तथा रैनुका व मुन्नी इत्यादि महिला पात्रों की भी अपनी–अपनी भूमिका है जिसमें व भली भान्ति सफलतापूर्वक निर्वहन करती दिखती है। इसलिए यह कहना की सभी पात्रों का चित्रण सफल है इसमें कोई दौ राय नहीं होगी।

पात्र चित्रण के अलावा बहुत सारे विषय जिनका अलग–अलग वर्णन किया जा सकता है जैसे:

लूट/आर्थिक शोषण; उपन्यास में शिक्षालयों में विद्यार्थियों से फीस के नाम पर वसूली करने का जिक्र अमर जो कि मुख्य पात्र है के माध्यम से दर्शाया गया है। वही लूट कही न कही वर्तमान में भी नजर आती है, वही जुर्माना व लूट प्रथा वर्तमान में निजी स्कूलों में आज भी विद्यमान है। हमारे स्कूलों और कॉलेजों में जिस तत्परता से फीस वसूल की जाती है, शायद मालगुजारी भी उतनी सख्ती से नहीं वसूल की जाती। महीने में एक दिन नियत कर दिया जाता है। उस दिन फीस का दाखिला होना अनिवार्य है। या तो ''फीस दीजिए, या नाम कटवाइए, या जब फीस न दाखिल हो, रोज कुछ जुर्माना दीजिए। कही–कहीं ऐसा भी नियम है कि उसी दिन फीस दुगुनी कर दी जाती है, और किसी दूसरी तारीख को दुगुनी फीस न दी तो नाम कट जाता है। ''काशी के क्वींस कालेज में यही नियम था। सातवीं तारीख को फीस न दो, तो इक्कीसवीं तारीख को दुगुनी फीस देनी पड़ती थी, या नाम कट जाता था।''[१] वैसी ही स्थिति आज के युग में भी है निजी विद्यालय बालकों से मनमानी फीस वसूल करते है और न भरने पर जुर्माना और अन्त में नाम काट दिया जाता ऐसा प्रतित होता है। प्रेमचन्द का समर और सलीम वर्तमान के विद्यार्थी है न की तात्कालिन युग के।

''अध्यापक ने बीसवें लड़के का नाम – अमरकान्त!
अमरकान्त गैरहाजिर था।
अध्यापक ने पूछा – क्या आज अमरकान्त नहीं आया?
एक लड़के ने कहा – आये तो थे, शायद बाहर चले गये हों।
क्या फीस नहीं लाया हैं?
किसी लड़के ने जवाब नहीं दिया।''[२]

सलीम ने बाहर जाकर इधर–उधर निगाह दौड़ायी, अमरकान्त का कहीं पता न था। जरा और आगे बढ़े, तो देखा, वह एक वृक्ष की आड़ में खड़ा है। पुकारा – अमरकान्त! ओ बुद्धूलाल! चलो, फीस जमा करो, पंडितजी बिगड़ रहे हैं।

शारीरिक शोषण; मुंशी जी ने कर्मभूमि उपन्यास के माध्यम से अंग्रेज सिपाहियों द्वारा भारत की दबी कुचली जनता का शोषण किया जाता और मोटा लगान वसूल किया जाता है और मौका पाकर भारतीय स्त्रियों की आबरू का भी चीर हरण किया जाता। हम देखते है कैसे डॉ० शान्ति कुमार और अमर, सलीम इत्यादि मुन्नी की इज्जत लूटने (बलात्कार) पर अंग्रेज सिपाहियों से लड़ते है। आज भी बहुत सारे क्षेत्रों में धनी व रसूखदार लोगों द्वारा धनहीन व मजदूर स्त्रियों का शारीरिक शोषण आम बात है। इसके इलावा बलात्कार की खबरे रोज ही अखबारों में छपती हैं।

मुकाबला; जब प्रो० शान्ति कुमार, अमर, सलीम व अन्य छात्र रास्ते से गुजर रहे थे तो ''अचानक ही उन्हें और सुनाई दिया ''अरहर के खेत की ओर से किसी औरत का चीत्कार सुनाई पड़ा। छात्रवर्ग अपने डण्डे सँभालकर खेत की तरफ लपका। परिस्थिति उनकी समझ में आ गयी थी। सलीम फिर मजूरों की तरफ देखकर बोला – तुम इतने आदमी खड़े ताकते रहे और तुमसे कुछ न हो सका। तुममें इतनी गैरत भी नहीं? अपनी बहू–बेटियों की आबरू की हिफाजत भी नहीं कर सकते? समझते होगे कौन हमारी बहु–बेटी है। इस देश में जितनी बेटियाँ हैं, सब तुम्हारी बेटियाँ हैं, जितनी बहुएँ हैं, सब तुम्हारी बहुएँ हैं, जितनी माएँ हैं, सब तुम्हारी माएँ हैं। तुम्हारी आँखों के सामने यह अनर्थ हुआ और तुम कायरों की तरह खड़े ताकते रहे! क्यों सब के सब जाकर मर नहीं गये।''[३]

प्रतिशोध; आगे चलकर बलात्कार पीड़ित मुनी का मुकदमा लड़ने हेतु आंदोलन किया जाता है व एक जुटता से मुन्नी को विक्षिप्त अवस्था कि दिखाकर कोर्ट में फांसी से बचाया जाता है क्योंकि मुन्नी ने उस गोरे सिपाही का कत्ल कर दिया था जिसने उसकी इज्जत लूटी थी। इस घटना से तत्कालीन समय में विरोध व प्रतिशोध का वर्णन किया गया है।

वैचारिक मतभेद; कथानक में बहुत सारे ऐसे मोड आते यहां पर पिता–पुत्र, दादी–पोती व मित्रों व वर्ण गत तथा वर्गगत वैचारिक मतभेद सामने आते जैसे – समरकान्त व अमरकान्त, सुखदा व अमर कान्त सलीम व अमर व गूदड चौधरी अमसीमा चन्द आदि के मध्य वैचारिक मतभेद नजर आता है। वर्तमान युग में यही समस्या आज के प्रत्येक व्यक्ति व वर्ग के साथ नजर आती है।

गांधीवादी सोच; कर्मभूमि के मुख्य पात्र अमर के गांधीवादी विचार अनेक स्थलों पर नजर आते है जैसे दुकान पर कंगन बेचने आये काले खाँ को यह कहकर वापिस कर देना की चोरी का माल नहीं खरीदूँगा और आगे चलकर अमर द्वारा अपने पिता समरकान्त को यह कहना की मैं मजदूरी करना पसंद करूँगा पर लोगो का खून नहीं चूसूंगा।

दोस्ती का फर्ज; कर्मभूमि में सलीम जो कि अमर का मित्र है और अमर कि फीस अदा करता है और कक्षा में जब अमर गैर हाजिर होता है तब अध्यापक से उसे बुला लाने की अनुमति प्राप्त करके दोस्ती का फर्ज अदा करता नजर आता है। ''अमर कान्त ने अचकन के दामन से आँखें पोंछ लीं और सलीम की तरफ आता हुआ बोला–क्या मेरा नम्बर आ गया?''[४] तुम जानते होगे, मुझे तो एक भी नहीं मालूम। एक तो यह तालीम ही है। जहाँ देखो वहीं दुकानदारी। अदालत की दुकान, इल्म की दुकान, सेहत की दुकान। इस एक प्वाइंट पर बहुत कुछ कहा जा सकता है।

कठिन परिश्रम की शिक्षा; लाला समरकान्त अपने पुत्र को कठिन परिश्रम का महत्व समझाते है और उसके निकम्मेपन पर कठोर चोट करते है और उसे धन का महत्व बताते है और अपने जीवन से प्रेरणा लेने हेतू उत्साहित करते है। इसके अलावा धन वसूल करने के तरीकों को बताया है। ''अमरकान्त के पिता लाला समरकान्त बड़े उद्योगी पुरूष थे। उनके पिता केवल एक झोंपड़ी छोड़कर मरे थे मगर समरकान्त ने अपने बाहुबल से लाखों की सम्पति जमा कर ली थी। पहले उनकी एक छोटी–सी हल्दी की आढ़त थी। हल्दी से गुड़ और चावल की बारी आयी। तीन बरस तक लगातार उनके व्यापार का क्षेत्र बढ़ता ही गया। अब आढ़तें बन्द कर दी थीं। केवल लेन–देन करते थे जिसे कोई महाजन रूपये न दे, उसे वह बेखटके दे देते और वसूल भी कर लेते।''[५] इस प्रकार समरकान्त द्वारा दी गई शिक्षा की प्रांसाकिता आज भी हमारे समाज में विद्यमान है। क्योंकि आज भी हर पिता अपने पुत्र की तरक्की चाहता है।

युग परिवर्तन; संसार में बहुत सारी घटनाओं में से कुछ में ही ऐसा होता है कि सांस्कृतिक/ खानदानी युग परिवर्तन हो जाये बहुत कम मौको पर ऐसा नजर आता है कि पुत्र–पिता का कार्यभार संभालने से इन्कार कर दे। मगर कभी–कभी बुराई में भलाई पैदा हो जाती है। पुत्र सामान्य रीति से पिता का अनुगामी होता है। महाजन का बेटा महाजन, पण्डित का पण्डित, वकील का वकील, किसान का किसान होता है; मगर यहाँ इस द्वेश ने महाजन के पुत्र को महाजन का शत्रु हो गयी, और जिसको सराहा, वह त्याज्य। महाजनी के हथकण्डे और षड्यन्त्र उसके सामने रोज ही रचे जाते थे। उसे इस व्यापार से घृणा होती थी। इसे चाहे पूर्व संस्कार कह लो; पर हम तो यही कहेंगे कि अमरकान्त के चरित्र का निर्माण पिता–द्वेष के हाथों हुआ। ऐसा ही प्रेम चन्द के उपन्यास कर्मभूमि में हुआ की लाला समरकान्त का पुत्र अमरकान्त साहूकारी प्रथा छोड़ मेहनत का काम करके युग परिवर्तन करता हुआ नजर आता है।

दाम्पत्य जीवन; अमर और सुखदा का जीवन भी वैसे ही विरोधाभासी स्थिति में चल रहा है दोनों ही के विचार आपस में नही मिलते थे। सुखदा धनी परिवार में पली बढ़ी थी उसके शौक भी वैसे ही थे परन्तु अमर का स्वभाव बिल्कुल विपरीत था। ''विवाह हुए दो साल हो चुके थे पर दोनों में कोई सामंजस्य न था। दोनों अपने–अपने मार्ग पर चले जाते थे। दोनों के विचार अलग, व्यवहार अलग, संसार अलग। जैसे दो भिन्न जलवायु के जन्तु एक पिंजरे में बन्द कर दिये गये हों। हाँ, तभी अमरकान्त के जीवन में संयम और प्रयास की लगन पैदा हो गयी थी। उसकी प्रकृति में जो ढीलापन, निर्जीवता और संकोच था वह कोमलता के रूप में बदलता जाता था।''[६] विद्याभ्यास में उसे अब रूचि हो गयी थी। हालांकि लालाजी अब उसे घर के धन्धे में लगाना चाहते थे। वह तार–वार पढ़ लेता था और इससे अधिक योग्यता की उनकी समझ में जरूरत न थी पर अमरकान्त उस पथिक की भाँति, जिसने दिन विश्राम में काट दिया हो, अब अपने स्थान पर पहुंचने के लिए दूने वेग से कदम बढ़ाये चला जाता था।

पिता की पुत्र को सीख; जैसे संसार का हर पिता अपने पुत्र को जीवन में अनेक प्रकार की सामाजिक सांस्कृतिक और पारिवारिक पृष्ठभूमि की सीख देता है वैसे ही अमरकान्त को उसके पिता लाला समरकान्त द्वारा सीख देते हुए दिखाया है। ''समरकान्त तीखे शब्दों में बोले – धन न रहेगा लाला, तो भीख माँगोगे। यों चैन से बैठकर चरखा न चलाओगे। यह तो न होगा, मेरी कुछ मदद करो, पुरूषार्थहीन मनुष्यों की तरह कहने लगे, मुझे धन की जरूरत नहीं। कौन है, जिसे धन की जरूरत नहीं? साधु–संन्यासी तक तो पैसों पर प्राण देते हैं। धन बड़े पुरूषार्थ से मिलता है। जिसमें पुरूषार्थ नहीं, वह क्या धन कमायेगा? बड़े–बड़े तो धन की उपेक्षा कर ही नहीं सकते, तुम किस खेत की मूली हो।''[७] वर्तमान में यह विचार संसार में विचरण करने वाला हर पिता अपने पुत्र को सिखाता है। इसके अलावा उसमें सामाजिक और सांस्कृति गुणों का विकास करता है।

पुत्र को पिता की बातों का बुरा लगना; कर्मभूमि में अमरकान्त अपने पिता समरकान्त की वार्ता ठीक वैसे ही सुनकर अनुसना कर देता है जैसे आम बच्चे आज भी करते है। अमर ने शिकायत की कोमलता या तो समझी नहीं, या समझकर उसका रस न ले सका। लालाजी ने जो आघात किया था, अभी उसकी आत्मा उस वेदना से तड़प रही थी। बोला मैं भी यही उचित समझता हूँ। अब मुझे पढ़ना छोड़कर जीविका की फिक्र करनी पड़ेगी। आज वर्तमान में भी यही स्थिति है कि जब भी कोई पिता अपने पुत्र को जीवन में काम आने वाली बाते समझाता है या समझाने का प्रयास करता है तो पुत्र को पिता की बाते बुरी लगती है।

विधवा जीवन; प्रेम चन्द जी ने छोटी उम्र में विधवा हो जाने वाली नारियों का दर्द ब्यान करने में लगभग गद्य की लगभग हर विद्या में महारथ हासिल की है। ''रेणुका देवी रूप और अवस्था से नहीं, विचार और व्यवहार से वृद्धा थीं। दान और व्रत में उनकी आस्था न थी; लेकिन लोकमत की अवहेलना न कर सकती थीं। विधवा का जीवन तप का जीवन है। लोकमत इसके विपरीत कुछ नहीं देख सकता। रेणुका को विवश होकर

धर्म का स्वांग भरना पड़ता था; किन्तु जीवन बिना किसी आधार के तो नहीं रह सकता।''[८] भोग–विलास, सैर–तमाशे से आत्मा उसी भांति सन्तुष्ट नहीं होती, जैसे कोई चटनी और अचार खाकर अपनी क्षुधा को शान्त नहीं कर सकता। जीवन किसी तथ्य पर ही टिक सकता है। इस प्रकार कर्म भूमि में विधवा जीविन के कठोर सत्य को दर्शाया है।

मातृ–प्रेम; प्रेम चन्द ने उन बच्चों की मनोस्थिति को बहुत गहराई से समझा है जो मां के प्यार से वंचित होते है। ''अमरकान्त ने अपने जीवन में माता के स्नेह का सुख न जाना था। जब उसकी माता का अवसान हुआ, तब वह बहुत छोटा था। उस दूर अतीत की कुछ धुँधली–सी और इसीलिए अत्यन्त मनोहर और सुखद स्मृतियाँ शेष थीं।''[९] उसका वेदनामय बाल–रूदन सुनकर जैसे उसकी माता ने रेणुका देवी के रूप में स्वर्ग से आकर उसे गोद में उठा लिया। बालक अपना रोना–धोना भूल गया और उस ममता–भरी गोद में मुँह छिपाकर दैवी सुख लूटने लगा। अमरकान्त नहीं–नहीं करता रहता और माता उसे पकड़कर उसके आगे मेवे और मिठाइयाँ रख देतीं। उसे इनकार न करते बनता। यह सब अमर को अपनी माँ से मिलने वाले स्नेह की भान्ति लगता इसलिए वह इन्कार नही कर पाता।

ईमानदारी; मुंशी प्रेमचन्द जी ने अमर के माध्यम से ईमानदारी कि शिक्षा भी दी है। अमरकान्त यह कहता हुआ नजर आता है कि तुम व्यर्थ मुझे दिक कर रहे हो। मैं चोरी का माल नहीं लूँगा, चाहे लाख की चीज धेले में मिले। तुम्हें चोरी करते शर्म भी नहीं आती। ईश्वर ने हाथ–पाँव दिये हैं, खासे मोटे–ताजे आदमी हो, मजदूरी क्यों नहीं करते। दूसरो का माल उड़ाकर अपनी दुनिया और आकबत दोनों खराब कर रहे हो। इस प्रकार मुंशी जी ने अमर और कालेखाँ के मध्य हुऐ वार्तालाप के माध्यम से ईमानदारी की शिक्षा भी तत्कालिन समय में दी है जो की सार्वभौमिक व सर्वसमय की शिक्षा है।

प्रकृति चित्रण; मुंशी जी ने प्रकृति चित्रण को भी अपनी हर रचना में कही न कही प्रदर्शित किया और इसी कड़ी में कर्मभूमि की यह पक्तियाँ प्रकृति चित्रण को प्रदर्शित करती है। उत्तर की पर्वत–श्रेणियों के बीच एक छोटा–सा रमणीक पहाड़ी गाँव है। सामने गंगा किसी बालिका की भाँति हँसती, उछलती, नाचती, गाती, दौड़ती चली जाती है। पीछे ऊँचा पहाड़ किसी वृद्ध योगी की भाँति जटा बढ़ाये, शान्त, गम्भीर, विचार–मग्न खड़ा है। ''यह गाँव मानो उसकी बाल–स्मृति है, आमोद–विनोद से रंजित, या कोई युवावस्था का सुनहरा मधुर स्वप्न। अब भी उन स्मृतियों को हृदय में सुलाए हुए, उस स्वप्न को छाती से चिपकाये हुए है।''[१०] इस प्रकार से मुंशी जी ने प्रकृति चित्रण किया है।

वर्ण–व्यवस्था; कर्मभूमि जिस काल की घटनाओं पर आधारित है उस समय एक तो हम अग्रेजों के गुलाम थे दूसरे वर्ण–व्यवस्था के इसी कड़ी में अनेक वाक्य कर्मभूमि में दशार्य गये है यथा इस प्रकार तात्कालिन समय की वर्ण–व्यवस्था को मुन्शी जी ने कर्मभूमि में भी वर्णित किया है उसी वर्ण व्यवस्था का प्रभाव वर्तमान में भी हमारे समाज पर नजर आता रोजाना ही ऐसी घटनाएं होती है जो हमें वर्ण और जाति के नाम पर बांटती है। ''चौधरी का जवाब तैयार था – 'तो हम कह देंगे, हमारे पुरबज छत्तरी थे, हालांकि अपने को छत्तरी–बंस कहते लाज आती है। सुनते हैं, छत्तरी लोगों ने मुसलमान बादशाहों को अपनी बेटियाँ ब्याही थीं। अभी कुछ जलपान तो न किया होगा भैया? कहाँ गया तेजा! जा, बहू से कुछ जलपान करने को ले आ। भैया, भगवान का नाम लेकर यही टिक जाओ। तीन–चार बीघे सलोनी के पास हैं। दो बीघे हमारे साझे में कर लेना। इतना बहुत है। भगवान दें, तो खाये न चुके।''[११]

जन–साक्षरता; मुंशी प्रेमचन्द जी ने कर्मभूमि उपन्यास में अमरकान्त द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में जन–साक्षरता की मुहीम को दर्शाया है। ''अमरकान्त की झोपड़ी में लालटेन जल रही है। पाठशाला खुली हुई है। पन्द्रह–बीस लड़के खड़े अभिमन्यु की कथा सुन रहे हैं। अमर खड़ा वह कथा कह रहा है। सभी लड़के कितने प्रसन्न हैं। उनके चेहरे चमक रहे हैं, आँखें जगमगा रही हैं। शायद वे भी अभिमन्यु जैसे वीर, वैसे ही कर्त्तव्यपरायण होने का स्वप्न देख रहे हैं। उन्हें क्या मालूम, एक दिन उन्हें दुर्योधनों और जरासन्धों के सामने घुटने टेकने पड़ेगें, माथे रगड़ने पड़ेंगे, कितनी बार वे चक्रव्यूहों से भागने की चेष्टा करेंगे, और भाग न सकेंगे।''[१२] जन–साक्षरता में अमर का बड़ा योगदान है आज भी अमर जैसे बहुत लोग है जो दबे, कुचले लोगों, आदिवासियों को शिक्षित करके समाज की मुख्य धारा में लाने के प्रयास में निरन्तर लगे हुए है।

भूमिदान; सलोनी नामक वृद्धा द्वारा पाठशाला हेतु भूमिदान से पुरातन समय में भूमिदान की प्रथा को इन्गित किया है। सलोनी काकी ने अपने घर की जगह पाठशाले के लिए दे दी है। उसका विचार है कि गांव के बच्चे पढ़कर गांव का विकास करेंगे। लड़के बहुत आने लगे हैं। उस छोटी–सी कोठरी में जगह नहीं है। सलोनी से किसी ने जगह माँगी नहीं, कोई दबाव भी नहीं डाला गया। बस, एक दिन अमर और चौधरी बैठे बातें कर रहे थे कि नयी आला कहाँ बनायी जाय।

परिवर्तन; अमरकान्त जब गांव में जाकर रहने लगता है तो वहाँ के लोगों को कई प्रकार की शिक्षाएं देता हुआ नजर आता है। यथा ''कई महीने गुज़र गये। गाँव में फिर मुरदा–मांस न आया। आश्चर्य की बात तो यह थी कि दूसरे गाँवों के चमारों ने भी मुरदा–मांस खाना छोड़ दिया।''[१३] इस प्रकार अमर समाज सुधार द्वारा कई प्रकार के परिवर्तन लाने की चेष्टा करता है।

हताशा; जैसे की हर माता–पिता आज यही चाहता है कि उनके बच्चे बुढ़ापे में उनका कारोबार आगे बढ़ाऐ और बुढ़ापे में उनका सहारा बने। गुलाम भारत में भी ही सोच भारतीयों की थी जिसे हम परम्परा कहें तो कुछ गलत नहीं होगा ऐसी ही आशा समरकान्त की थी। परन्तु केवल उन्हे हताशा ही प्राप्त हुई क्योंकि अमर पिता के विपरीत स्वभाव का प्राणी था। ''लाला समरकान्त की जिन्दगी के सारे मंसूबे धूल में मिल गये। उन्होंने कल्पना की थी कि जीवन–संध्या में अपना सर्वस्व बेटे को सौंपकर और बेटी का विवाह करके किसी एकान्त में बैठकर भगवत–भजन में विश्राम लेंगे, लेकिन मन की मन में ही रह गयी।''[१४]

दोस्तों में हास–परिहास; सलीम जब अफसर बनकर उसी इलाके में आता है यहां अमर रहता है तब अमर सलीम से मिलने उसके घर पहुँचता है तब दोनों मित्रों में कुछ उपहास–परिहास होता जो निम्नलिखित पक्तियों के माध्यम से दर्शाया गया है। अमर वहीं जमीन पर बैठ गया और बोला – 'कुछ खातिर–तवजो तो की नहीं, उलटे और फटकार सुनाने लगे। देहातियों में रहता हूँ, जेंटलमैन बनूँ तो कैसे निबाह हो? तुम खूब आये भाई, कभी–कभी गप–शप हुआ करेगी। उधर की खैरआफ़ियत कहो। यह तुमने नौकरी क्या कर ली। डटकर कोई रोज़गार करते, सूझी भी तो गुलामी।'[१५] इन वाक्यों के माध्यम से दोनों मित्र एक दूसरे से हास–परिहास करते नजर आते हैं।

मर्दों को ताना; जब सुखदा अहर में आन्दोलन की तैयारियाँ करती है और उच्च जाति के लोगों को सबक सिखाने की ठान लेती है तब प्रो० शान्ति कुमार उनसे मिलने जाते परन्तु उनकी दब्बू प्रवृति देखकर रेणुका देवी उन्हें औरत बनने का ताना देकर उनको लजित करती है; और कहती है तुमसे मैं शादी करूँगी।

उपसहार

मुंशी जी ने अपनी हर रचना में किसी न किसी सामाजिक समस्या को उठाया कर्मभूमि में वर्ण, जाति, वर्गगत व सामाजिक–सांस्कृतिक समस्याओं को उठाया है। इसके अलावा छूआ–छूत की समस्या भी तत्कालीन समय की बड़ी समस्या थी। जबकि बेरोजगारी अग्रेजी सभ्यता द्वारा भारतीय सभ्यता का दमन व शोषणकारी रूप तात्कालिन समय की मुख्य समस्या थी उस समय अग्रेजों के साथ–साथ उच्च वर्ग निम्न वर्ग का शोषण करता हुआ नजर आता है। इसके अलावा आर्थिक शोषण को मुंशी जी ने शिक्षालयों द्वारा ली जानी वाली फीस के रूप में दिखाया। इसी कर्म में उस समय की सेवा भावना और दानवृती को मुंशी जी द्वारा अनेक पात्रों के माध्यम से दशार्या है सामाजिक परिवर्तन की अच्छाई भी अमरकान्त और सुखदा, नैना व शान्ति कुमार के माध्यम से दर्शाया है। घरेलू झगड़ों को भी मुंशी जी ने अमरकान्त कि पारिवारिक घटनाओं के माध्यम से दर्शाया है इसके अलावा बहुत बहुत सारी सामाजिक समस्याओं को मुंशी जी ने कर्मभूमि के माध्यम से दर्शाया है। अन्त में यह कहना उचित होगा की कर्मभूमि एक सफल सामाजिक उपन्यास है।

सन्दर्भ सूची

[१]*कर्मभूमि,* साधना पाकेट बुक, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या ८१
[२]*कर्मभूमि,* किताब घर प्रकशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या ८१
[३]*कर्मभूमि,* कला मन्दिर प्रकशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या १६
[४]*कर्मभूमि,* साधना पाकेट बुक, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या ८१
[५]*कर्मभूमि,* कला मन्दिर प्रकशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या ०५
[६]*उपरोक्त,* पृष्ठ संख्या ०५
[७]*कर्मभूमि,* किताब घर प्रकशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या ९५
[८]*कर्मभूमि,* साधना पाकेट बुक, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या १७
[९]*उपरोक्त,* पृष्ठ संख्या १००
[१०]*उपरोक्त,* पृष्ठ संख्या १०८
[११]*कर्मभूमि,* कला मन्दिर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या ९९
[१२]*उपरोक्त,* पृष्ठ संख्या १११
[१३]*कर्मभूमि,* साधना पाकेट बुक, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या १३४
[१४]*उपरोक्त,* पृष्ठ संख्या १७७
[१५]*उपरोक्त,* पृष्ठ संख्या १८९

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,23-25**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 29 जून 2017

''साहित्य सृजन की सशक्त अभिव्यक्ति मिथक''

हरिकेश मीना*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *''साहित्य सृजन की सशक्त अभिव्यक्ति मिथक''* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *हरिकेश मीना* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

साहित्य के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक काव्यात्मक शक्ति की प्रधानता रही है। भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों साहित्यों के प्राचीन ग्रन्थ काव्यमय हैं। काव्यों ने कभी महाकाव्य रूप में, कभी श्लोकों और सूत्रों में, कभी चरित कथा, गाथा, आख्यान और पुराण रूप में मानव जीवन की अनेक गतिविधियों की व्याख्या की है। साहित्येतिहास का विकास मिथकों की सामाजिक व सांस्कृतिक विकासशील प्रवृति पर केन्द्रित रहा है। मिथक और काव्य में गहरा मनौविज्ञानिक, संवेदनशील और सात्विक सम्बंध रहा है। जिसके कारण मिथक साहित्य सृजन का प्रमुख साधन सिद्ध हुआ। अवधेश कुमार सिंह ने कहा है, ''प्राचीन काव्य ग्रन्थों से लेकर आधुनिक कविता तक मिथकीय चेतना का विकास हुआ है, और यह सिर्फ अचेतन की प्रतीति नहीं कराती, सिर्फ भाषा से ही परिचय नहीं कराती, बल्कि पूरे समाज को जानकारी प्रदान करती है।''[१]

हिन्दी में मिथक शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा किया गया है। 'मिथक' शब्द अंग्रेजी के 'मिथ' (डलजी) शब्द से हिन्दी में आया है। बीसवीं शताब्दी के नव–जागरण काल ने मिथक को जल साहित्य में अभिसिंचित करके विभिन्न स्तरों पर व्याख्यायित किया और उनके द्वारा राष्ट्रीय, प्रगतिवादी बौद्धिक आन्दोलनों को बल प्रदान किया। अर्वाचीन साहित्य अस्मिता के क्षेत्र में मिथक वास्तव में मौलिक उत्स है, जो सहृदय पाठक को नवीन दृष्टि देकर युगानुरूप परिवर्तन के साथ जीवन मूल्यों को स्थापित करने में सहायता प्रदान करता है। विश्व साहित्य में 'मिथक' अपनी मौलिकता के कारण स्पृहणीय विधा है। हिन्दी कविता के लिए 'मिथक' पूरी तरह आधुनिक है। नयी कविता में सृजन के लिए विशिष्ट उपादान के लिए प्रयुक्त होने लगा। नये कवियों ने भी अपनी प्रबंध रचना में मिथकों का विनियोजन अपरिभाष्य संवाहकता के साथ किया।[२]

मिथक अवचेतन मस्तिष्क में आधविम्बों के रूप में विधमान रहते हैं, जो बाह्य रूप में विभिन्न कथाओं के माध्यम से प्रकट होते हैं, जीवन में जितने प्रकार की स्थितियॉ बनती हैं, उतने ही आधविम्ब बनते हैं। ये बिम्ब मिथक निर्माण के लिए केवल विषय वस्तु ही नहीं प्रदान करते बल्कि किसी विषय विशेष से सम्बंधित कल्पना के बिना भी इनकी अनेक आवृतियाँ व्यक्ति के मानस–पटल पर अंकित होती रहती हैं।[३]

* व्याख्याता हिन्दी, राजकीय कन्या महाविद्यालय, करौली (राजस्थान) भारत

© लेखक २०१७, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

जब विशिष्ट आधारविम्बों से सम्बंधित स्थिति उत्पन्न होती है। तब वे सक्रिय हो उठते हैं, और मूल प्रवृतियों की भांति अपनी अभिव्यक्ति के लिए रास्ता बना लेते हैं।[४]

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हम स्वयं को मिथिकीय तत्वों अथवा संस्कारों से युक्त मान सकते हैं, लेकिन मानव अपनी प्रकृतिवश मिथक की आवश्यकता से इंकार नहीं कर सकता है।[५]

चाहे संसार की सम्पूर्ण सभ्यतायें एवं परम्परायें एकाएक नष्ट हो जायें तब भी जो पुन: निर्मित होकर आरम्भ होगा, वह सम्पूर्ण इतिहास, मिथक समूह तथा धर्म ही होगा। किसी कारणवश सृजन के क्षणिक तत्वों का विनाश हो सकता है, किन्तु मानव की सृजनात्मक अभीष्ट शक्ति को समाप्त कर पाना असम्भव है, तब किसी भी युग में मानवता का मिथकता से सम्बंध–विच्छेद कठिन है।[६]

साहित्य में पौराणिक गाथाओं तथा पुरा कथाओं को समावेशित करने के सम्बंध में कहा है कि साहित्य में पौराणिक कथाओं का निर्माण मनुष्य को कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य समझते हुए उदाहरण देने के निर्मित किया जाता है, ऐसी कथाओं को विदेशों में ''मिथ'' तथा भारत में 'मिथक' कहकर पुकारा जाता है।[७]

साहित्य सृजन के विभिन्न उपादानो में बिम्ब, प्रतीक, आख्यान आदि के माध्यम से कवि अपनी अनुभूत संकल्पनाओं को अभिव्यक्त करने की चेष्टा रखता है, जिसके संदर्भ में कह सकते है– मिथक साहित्य में प्रतीक योजना अनंत है कहने की अपेक्षा यह कहना अधिक उपयुक्त लगता है कि वह स्वयं प्रतीक है, अत: गहन भावों को व्यक्त करने के लिए मिथक का सहारा लेना पड़ता है। दूसरी ओर मिथकों के आँचल की ओट पाकर गहनतम् भाव चिरकाल तक सुरक्षित रह पाते हैं।[८]

जीवन में मिथकों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए डॉ० उषा पुरी ने कहा है, ''सांसारिकता से त्राण पाने के लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह से छुटकारा पाना परम आवश्यक है, अनेक मिथक कथायें इन तथ्यों पर प्रकाश डालती है।''[९]

आदर्श यथार्थ का विरोधाभाषी होता है। समाज में आदर्श की स्थापना करने के लिए इतिहास पुरूष या महापुरूष के जीवन अंशों को ग्रहण कर साहित्य में उनका अनुमोदन एक समाज विज्ञानी की नितान्त आवश्यकता है जिसका आधार मिथक होते हैं।[१०]

मिथक संघर्ष पूर्ण जीवन से व्यक्ति एवं समाज के परिवेश की सम्पूर्णता को समंजित करते हुए सदैव सहज जीवन यापन का प्रयास करता है। विषमताओं में जीवन काटकर ही मनुष्य कुछ बन पाता है।[११]

भौतिक विषमतायें मनुष्य को दृढ़ और सुकर्मी बनाती हैं, आज जो देवता रूप में प्रतिष्ठित है, उन्होंने जीवन में अनेक कष्टों का सामना किया है, मिथक कथायें इस तथ्य की पुष्टि करती हैं।[१२]

धार्मिक धारणा का विकास मानव मस्तिष्क के एक पहलू से होता है जो गम्भीर चिन्तन पूर्ण तथा आत्मनिवेदनात्मक है। मिथकीय धारणायें उस मानसिक पक्ष से उत्पन्न होती हैं जो स्वछन्द कल्पना का परिणाम है। आधुनिक समय में वैचारिक दृष्टि–कोण को परिभाषित करते हुए डॉ० मालती सिंह का मानना है– मिथक मानव के लिए ईश्वर विरोधी हो सकते हैं, लेकिन आदिम मानव के लिए कथायें धार्मिक महत्व की होती हैं। मिथक साहित्य का ऐसा उपकरण है जो देवताओं के स्वभाव, विश्व की उत्पत्ति, मानव उत्पत्ति एवं विकास आदि गम्भीर तत्वों पर प्रकाश डालती हैं।[१३]

अमूर्तिकरण द्वारा दैवीकरण मिथकों की अनुपम विशेषता मानी जाती है। एक सर्वशक्तिमान सत्ता के अस्तित्व के बिना धर्म के अस्तित्व को अस्वीकार करना कठिन है। यदि हम धर्म के प्रति मिथकों के दायरे को अस्वीकार करेंगे तब ईश्वर की परिकल्पना को ही मिथकों से परे करना पडेगा। धार्मिक प्रतीक मानव जीवन के अनुभव के प्रत्येक क्षेत्र से लाभान्वित हुआ है, विशेष रूप से मानव ने प्रकृति तथा स्वयं की प्रवृति से अधिक लाभ उठाया है; और मिथकों में ही ये सम्बंध नाटकीय ढंग से निरूपित होते हैं। तब हम कह सकते हैं कि धार्मिक प्रतीकों का प्रारम्भिक उद्‌गम मिथकों से ही हुआ होगा। मिथक नाटकीय भाषा में होते हैं और नाटकीय भाषा सबसे अधिक बोधगम्य होती है।[१४]

समाज में बिखराव, उदासीनता, दुराचार, असभ्यता एवं अभद्रता पर अनुशासन की डोर थामने में किसी युग के साहित्य में मिथक की प्रासंगिकता हमेशा रहती है। हिन्दी साहित्य का प्रत्येक युग मिथकीय अवचेतना से अछूता नही है, भावाबोध से लेकर कलात्मक अभिव्यक्ति तक सर्वत्र मिथकों की उपादेयता दृष्टिगोचर होती है। ''मिथक जीवन के लिए अपरिहार्य है मिथक

के बिना मानव आत्मा रहित एक पशु बन जायेगा यदि मनुष्य द्वारा अर्जित मिथकीय परम्पराओं को एकाएक समाप्त कर दिया जाए तब भी मानव नये–नये मिथक गढ़ लेगा।[१५]

मिथक का मानवीय वृत्तियों से गहन सम्बंध है। साहित्य स्वयं मावनीय वृत्तियों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। मिथक एवं साहित्य तत्वत: एक हैं। मिथकों में भावात्मकता, कल्पनाशीलता, प्रतीकात्मकता, चित्रात्मकता एवं रहस्यानुभूति जैसे अनेक तत्व हैं जो उन्हें साहित्य के अत्यन्त निकट पहुचा देते हैं। वस्तुत: मिथकों के माध्यम से मानव ने साहित्य सृजना का संसार प्राप्त किया है।

कवियों ने अतीत के गौरवपूर्ण खजाने से खोज–खोजकर बहुमूल्य ऐसे कथानक रूपी रत्नों को अपने महाकाव्यों में जोड़ा है, जो आज के वातावरण, परिस्थितियों आदि के लिए मानव मन के अर्न्तमन को टटोल कर सोई हुई संघर्ष शक्ति को जगाएँ। प्राचीन विश्वासों के मधुर बन्धनों को संवेदनापरक भावनाओं में बाँधकर आधुनिक कवि आज के मानव को अपनी संस्कृति, अपनी सत्ता, अपनी उपयोगिता का आभास कराना चाहता है। मिथक अपनी संरचनात्मक विश्लेषण पद्धति से आचरण की शुद्धता की ओर दृष्टिगत कराके जीवन मूल्यों की सृजनात्मकता की बात कहता है। मस्तिष्क पर मनोविश्लेषणात्मक प्रभाव डालकर उसकी सृजनशीलता का विकास करने की प्रेरणा देता है। मिथक मानव कल्याण एवं साहित्य सृजना में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[१]अवधेश कुमार सिंह –*मिथक और साहित्येतिहास,* पृष्ठ संख्या १९४ (मिथक और भाषा) सम्पादक –डॉ० शम्भूनाथ, १९८१

[२]रश्मि कुमार –*नयी कविता के मिथक,* २०००, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

[३]मालती सिंह –*मिथक एक अनुशीलन,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[४]वही, पृष्ठ संख्या ३६

[५]वही, पृष्ठ संख्या ३७

[६]वही, पृष्ठ संख्या ३७

[७]उषा पुरी –*भारतीय मिथक कोश,* भूमिका, पृष्ठ संख्या ४७

[८]वही, पृष्ठ संख्या ४९

[९]वही, पृष्ठ संख्या ६८

[१०]मालती सिंह –*मिथक एक अनुशीलन,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या ५५

[११]उषा पुरी –*भारतीय मिथक कोश,* भूमिका, पृष्ठ संख्या ४७

[१२]वही, पृष्ठ संख्या ६९

[१३]मालती सिंह –*मिथक एक अनुशीलन,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या ४८

[१४]वही, पृष्ठ संख्या ५०

[१५]आई०ए० रिचर्ड्स –*कालरिज ऑन इमिजेशन,* पृष्ठ संख्या १८१

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008 भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,26-30**
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777 प्रकाशनार्थ स्वीकृत 23 मार्च 2017

समकालीन कला

रवि प्रकाश सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *समकालीन कला* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *रवि प्रकाश सिंह* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ।

कला वह शक्ति है जो हमारे मन व मस्तिष्क को शुद्ध विचारों से ऊर्जावान रखती है। यानी वह ऊर्जा जो कि हमें सत्य के समीप ले जाती है। एक शब्द में कहा जाए तो उसे हमें ''चेतना'' कहते हैं। जो हमें सत्य का बोध कराती है। वही चेतना है जो हमें शांत करती है जिसकी अभिव्यक्ति हम अपनी कला में करते हैं।

हिन्दी कवि रघुवीर सहाय अपनी एक कविता 'कला क्या है' में कहते हैं– ''कला और क्या है सिवाय इस देह मन आत्मा के,/ बाकी समाज है,/ जिसको हम जानकर समझकर बताते हैं औरों को।''

इसी सत्य के समकक्ष होकर कलाकार कला निर्मित करता आ रहा है जिसका प्रभाव हमें आदिकाल से समकालीन कला में मिलता है।

समकालीन कला का अर्थ है वह कला जो आज भी प्रासंगिक है यानी नवीनतम कला।

समकालीन कला पर वैश्वीकरण का प्रभाव

पहले कलाकार अपनी कला की प्रदर्शनी लगाते थे व अपनी कला से लोगों को समाज व उसके प्रति जागरूक कर कला के द्वारा समाज का सत्य उनके समक्ष रखते थे। आज इंटरनेट के माध्यम से हम दुनिया के किसी भी कोने में बैठकर कलाकृति बेच व खरीद सकते हैं। हालाँकि छोटे कलाकारों के लिए अपनी कला को आसानी से बेचने का यह एक विशाल मंच है।

''आज किसी नामचीन या उदीयमान या संघर्षरत कलाकार की सबसे बड़ी इच्छा क्या होगी। उसकी पेंटिंग्स या उसकी कला प्रस्तुति की चर्चा हो। उसका काम हाथों हाथ लिया जाए। वो कला बाजार में स्थापित हो, लेकिन क्या वास्तव में एक जेनुइन कलाकार की बुनियादी इच्छाएँ यही होती होंगी या उसकी बुनियादी इच्छा यह होती होगी कि उसकी कला के मर्म को समझने वाले ज्यादा से ज्यादा आयें। वो किसी भी फॉर्म में काम कर रहा हो किसी भी तकनीक का सहारा ले रहा हो, लेकिन

* असिस्टेंट प्रोफेसर, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : artistrpsraja@gmail.com (आजीवन सदस्य)

© लेखक २०१७, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, इस शोध प्रपत्र मे लिखी हुई पंक्तियों और चित्रों के लिये लेखक स्वयं जिम्मेदार है। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

जब कोई दर्शक उसकी रचना के सामने आकर खड़ा हो तो वो उसमें किसी एक ऐसे बुनियादी तत्व की शिनाख़्त कर ले जो तत्त्व उस रचना के निर्माण का बुनियादी टूल रहा हो। क्या अत्मा वो टूल हो सकती है। क्या हम कलाकार की रचना में उसकी आत्मा की छवि को देख सकने की सामर्थ्य अपनी निगाह में ला सकते हैं।''[१]

वैश्वीकरण एक तरफ जहाँ प्रगति में सहायक है वहीं कला की दृष्टि से यह समकालीन कला पर दुष्प्रभाव डालता है। इसका यह प्रभाव पड़ता है कि कला सामान्य लोगों तक नहीं पहुँच पाती और परिणामस्वरूप समकालीन समय में समाज कला से दूर होता जा रहा है।

बदलते परिदृश्य में भारतीय समकालीन कला

''१९८० के दशक के मध्य में समकालीन भारतीय कला को नई दिशा मिली। पूर्व के दशकें में कला दृश्य में जिन बातों की प्रधानता थी वे धीरे–धीरे लुप्त हो गई। नई पीढ़ी के उभरते कलाकारों की सोच अलग थी। उन्होंने नई–नई अवधरणाओं को तलाशा और इस संकल्पना का प्रभुत्त बना ताकि कलाकार की सोच कृति के अनुरूप हो जिससे उसे परयोजना पूरी करने में सहायकों की सेवायें लेने की छूट हो। आधुनिकता के बाद उभरी सोच ने अपनी छाप छोड़ी। इन विचारों ने नए माध्यमों सामग्री तथा तरीकों के साथ प्रयोग किए उन्होंने कार्य के स्तर की फिर से कल्पना की जिसमें कार्य स्थल विशिष्ट तीव आयामों संस्थापनाओं का प्रयास किया गया और वे वैश्विक तथ स्थानीय दोनों उत्तेजनाओं का व्यवहार करने के लिए तैयार थे। चित्रों में लिंग, पर्यावरण तथा शहरी संकट से संबंधित विषयों को चित्रित किया जाने लगा। चित्र निर्माण में लोकप्रिय संस्कृति के रोमांच ने प्रमुख प्रेरक का काम किया। कुछेक युवा कलाकारों ने, जब वे पुन: प्रस्तुति रूपों पर काम कर रहे थे तब भी वर्णात्मक अवयवों से परहेज किया और यहां तक कि मनमौजीपन को भाव अभिव्यक्त किया। कुल मिलाकर समकालीन कला ने विशिष्ट निजी तिथि परिवेश के चमकदार आवरणों को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया और अधिकार मूलक सक्रियता तथा जोशपूर्ण चेतना को प्रदर्शित किया।''[२]

किन्तु २ शताब्दी के पश्चात् भारतीयों के मन व मस्तिष्क में भारतीय कला की विचारधारा को लेकर परितर्वन आने लगा। इसमें भारतीय दर्शन ने उनका सहयोग दिया व अन्त में यह निष्कर्ष प्राप्त किया गया कि भारतीय कलाकारों को प्राचीन कलाओं को प्रेरणा स्त्रोत बनाना चाहिए। इसमें भारतीय व विदेशी विद्वानों दोनों ने साथ मिलकर काम किया जिसके कारण भारतीय कला पर पाश्चात्य कला शैली का प्रभाव दिखाई देने लगा। इसका सबसे बड़ा उदाहरण राजा रवि वर्मा का कला में दिखाई पड़ा। इनके विषय तो पौराणिक थे परन्तु उनकी शैली पर विदेशी परंपरा का प्रभाव था। परन्तु पाश्चात्य विचारधारा होने के बाद भी उनके प्रयत्नों की अवहेलना नहीं की जा सकती। उन्होंने हमारा ध्यान भारतीय परम्पराओं व आदर्शो की ओर आकर्षित किया। उन्होंने भारतीय व पश्चिमी शैली के समन्वय से भारतीय कला को नवीन स्वरूप देने का प्रयत्न किया था।

ई०बी० हेवेल व अन्य कलाकारों के प्रयासों से अजन्ता, एलोरा, बाघ आदि गुफाओं की प्रतिलिपियां मुद्रित की जाने लगी। ई०बी० हेवेल जो मद्रास कला विद्यालय के प्रधानाचार्य बने, उन्होंने सभी का ध्यान भारतीय चित्रकला की ओर आकृष्ट किया। उन्होंने कहा कि, ''यूरोपीय कला तो केवल स्थूल यानी सांसारिक वस्तुओं का ज्ञान कराती है, पर भारतीय कला सूक्ष्म दृष्टि प्रदान करती है।''

बंगाल स्कूल की कला शैली से प्रेरित होकर शांतिनिकेतन के कलाकारों ने वाश पद्धति में भी कार्य किया साथ ही चित्रकला व मूर्तिकला के अतिरिक्त भी अनेक शैलियों की खोज की। जैसे– बाटिक, एचिंग, ग्राफिक, वुडकर, शिल्पकला आदि।

२०सवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थ भाग में मुम्बई के चित्रकारों ने भारतीय व पाश्चात्य दोनों कला शैलियों के मेल से नवीन शैली में कार्य करने का प्रयास किया। भारत में कई कला विश्वविद्यालय खोले गए जहाँ पर छात्रों को प्राचीन भारतीय कला शैलियों, जैसे – अजन्ता, राजपूत व कांगड़ा शैली का अध्ययन कराया गया।

भारतीय कला के विकास के साथ–साथ मुंबई स्कूल ने पाश्चात्य कला शैली को भी विकसित किया। इनेक कलाकारों ने यथार्थ शैली में पाश्चात्य शैली का मिश्रण किया। साथ ही टेम्परा व तैल चित्रण पद्धति पर भी कार्य किया। इसमें बेंद्रे, हैब्बार, सूजा, रजा, आरा आदि कलाकारों ने सहयोग दिया।

इसके बाद प्रगतिशील कलाकारों एम०एफ० हुसैन, एफ०एन० सूजा, रजा, आरा आदि कलाकारों ने भारतीय कला को उसके चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। हुसैन की कला में स्त्री के दया व मातृत्व भाव की प्रधानता रही है। उन्होंने रागमाला, रामायण, महाभारत, घोड़े, लैंप, मकड़ी आदि विषयों पर चित्रांकन किया। एफ०एन० सूजा की कला पर सेजां, गोगां और मातिस का प्रभाव पड़ा जो उनकी कलाकृतियों में दिखाई पड़ता है।

समकालीन कला में मीडिया की भूमिका

आज हम कला पर आधारित फिल्में देख सकते हैं। एम०एफ० हुसैन ने १९८२ ई० तक २ फिल्में बना दी थी। उनका कहना था, ''घोड़े बेचता हूँ, फिल्में बनाता हूँ।'' उनकी फिल्म 'थ्रू दी आईज ऑफ ए पेन्टर' ***(Through the eyes & a painter)*** पर उन्हें 'गोल्डन बियर' अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था। इसके सिवा इन्होंने 'गजगामिनी' और 'मीनाक्षी' फिल्म बनाई जो उनकी कलात्मक दृष्टि को दर्शाती है।

इसके अलावा राजा रवि वर्मा की कला पर आधारित फिल्म 'रंगरसिया' केतन मेहता द्वारा बनाई गई जिसमें राजा रवि वर्मा के जीवन व उनकी कला विकास यात्रा पर दृष्टि डाली गई।

इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि मीडिया के द्वारा समकालीन कलाकार समाज को जल्द ही एक नई दिशा देने में अधिक सफल रूप से निखर सकता है।

व्यवसायीकरण के कारण कला रूपों का विकास एवं भविष्य

व्यवसायीकरण या बाजारीकरण के कारण हमें कला के नये–नये रूपों की जानकारी मिलती रहती है। जैसे– एनामॉर्फिक आर्ट तकनीक जो कि १५वीं शताब्दी में 'लियोनार्दो द विंची' द्वारा बनाई गई थी। जिसमें कला एक निश्चित दूरी से ही समझ आती थी या कभी–कभी आईने में देखकर ही कला स्पष्ट होती थी। आज इस कला ने विकास करके त्री–आयामी कला का रूप ले लिया है। आज ऐसे कलाकारों का भी नाम सुनाई पड़ता है जो अपने शरीर के अंगों का प्रयोग करके भी कलाकृतियाँ बनाते हैं।

''देश, समाज और राजनीति की तरह साहित्य और संस्कृति और कला की दुनिया में भी बड़े बदलाव आये हैं और नयापन आया है। भाषा की तरह कला में भी पारम्परिक औजारों के बदले नये औजार और नई विचार दृष्टि आई है। हम निरन्तर एक नये पन की ओर अग्रसर हैं। समकालीन कला अपने फॉर्म, अपने विधान, अपने कंटेंट और अपनी पूरी विषयवस्तु में एक लम्बी छलांग लगा कर एक नये धरातल पर आ गई है। आर्ट ऑन कैनवस से लेकर आर्ट ऑफ इंस्टालेशन, लाइव आर्ट, स्ट्रीट आर्ट, पब्लिक आर्ट, पॉप आर्ट, डिज़ीटल आर्ट, वीडियो आर्ट, सूचना प्रौद्योगिकी के नये मीडिया से जुड़ इण्टरैक्टिव इस्टॉलेशंस आदि नये प्रयोगों ने पूरे कला परिदृश्य में एक थ्रिलिंग और एक्साइटिंग एम्बियंस बना दिया है। एक नई हलचल और नया मॉमेंटम हम देख सकते हैं और भारतीय कला और उससे जुड़े रचनाधर्मी भी इससे अछूते नहीं है।''[३]

परन्तु उसका सबसे बड़ा दोष यह है कि व्यवसायीकरण के कारण कलाकार कला अपनी आत्म साधना के लिए नहीं अपितु केवल प्रसिद्धि के लिए बनाने लगा है। कला जहाँ आत्मिक व मानसिक चेतना का विकास करती थी वहाँ अब कला केवल धन–सम्पत्ति बनाने का माध्यम बनती जा रही है। कला स्वांत: सुखाय के लिए बनाई जाती थी व साथ ही यह दर्शक की चेतना का भी विकास करती थी परन्तु आज के दशक में कला को आर्थिक दृष्टि से देखा जाने लगा है व यह केवल साज –सज्जा का साधन बनकर रह गई है।

समकालीन कला में कला–पुरोधाओं का अवदान

इसके बाद नंदलाल वसु ने टेम्परा, वॉश, जलरंग, पैंसिल, स्याही, लिनोकट, रंगीन पेन आदि माध्यमों में कार्य किया।

विश्व–विख्यात कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ६७ साल तक कला में कोई विशेष रूचि नहीं दिखाई। प्रारम्भ में तो वे चित्रण खेलक्रीड़ा मात्र के लिए करते थे परन्तु इसके बाद उन्होंने अपने रेखांकन में आकृतियां उभरती हुई अनुभव की। उन्होंने पांडुलिपियों पर कार्य किया और कहा कि ''कुछ रेखाओं से शांत करूणा की अभिव्यक्ति होती थी, तो कुछ से रोष। मैं तब ये नहीं जानता था कि वे आकृतियाँ, मेरी सौम्य कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में परिणित हो जायेंगी।''

रामकिंकर वैज ने चित्रकला के साथ–साथ मूर्तिकला में भी कार्य किया। उन्होंने मिट्टी, बालू, प्रस्तर, प्लास्टर, कंक्रीट आदि से आकृतियां उत्कीर्ण की है। इनकी प्रतिमाओं में शरीर रचना, अनुपात, आकृतियों के उभार, सुस्पष्ट गठन आदि विशेषता है।

मुद्रण के क्षेत्र में जॉन गुटेनबर्ग का नाम आता है जिन्होंने धातु के गतिशील अक्षरों का आविष्कार किया। जहाँ से मुद्रण पद्धति ने विकास किया।

समकालीन कलाकारों में एम०एफ० हुसैन का नाम सुप्रसिद्ध है। इन्हें भारतीय कला का पिकासो कहा जाता है। इन्होंने मोटी रेखाओं में घिरी आकृतियों में दैनिक जीवन के चित्रों को दर्शाया है। उन्होंने अपनी कला में स्त्री के भाव पक्ष को दर्शाया है। मदर टेरेसा के चित्र विश्व प्रसिद्ध हैं।

बेन्द्रे, सूजा, रजा, आरा, वेन गॉग, एडवर्ड मुंख, सिजां, पॉल गॉगुइन आदि ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने समकालीन कला में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

संदर्भ सूची

[1,3]*www.samayantar.com*
[2]*www.ngmaindia.gov.in*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,34-37**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 01 जून 2017

दारा शिकोह के आध्यात्मिक विचार

डॉ० स्मृति भटनागर*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *दारा शिकोह के आध्यात्मिक विचार* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *स्मृति भटनागर* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

मुगल साम्राज्य का गुले–अव्वलीने–गुलिस्तान ए आही दारा शिकोह वास्तव में भारत की आध्यात्मिक धार्मिक परम्परा की विरासत का संवाहक था यद्यपि वह मयूर सिंहासन को प्राप्त करने में असफल रहा परन्तु भारत जैसे विभिन्न धार्मिक–आध्यात्मिक विचारों वाले समाज में आज भी अपनी उदारवादी धार्मिक विचारधारा के फलस्वरूप दारा शिकोह भारतीयों का हृदय सम्राट है दारा शिकोह के धार्मिक विचार एवं दृष्टिकोण (वहदत–उल–वुजूद) आज भी सार्वभौमिक हैं प्रासंगिक हैं, इतिहास साक्षी है कि यदि एक विशाल और शक्तिशाली साम्राज्य के लिए एक औरंगजेब की आवश्यकता है तो एक सुरक्षित और समृद्ध शान्ति–अमन के अंबर तले फलते–फूलते वृहद साम्राज्य के लिए एक दारा शिकोह अनिवार्य है आज के सन्दर्भ में दारा शिकोह के धार्मिक विचारों एवं दृष्टिकोण का अध्ययन सामयिक हो जाता है दारा स्वभाव से सादगीपूर्ण था एवं सत्य की खोज में डूबता उतरता रहा विपरीत परिस्थितियों में भी मानव मूल्यों की खोज में रहा, वास्तव में दारा शिकोह जीवन पर्यन्त एक विद्यार्थी रहा यदि शाहजहाँ सिकन्दर से प्रभावित था तो दारा शिकोह अरस्तु से, २० मार्च १६१५ को जन्में दारा शिकोह की शिक्षा–दीक्षा मुगल रवायत के अनुसार बा मकतब रफ्तन आरंभ हुई।[1] अब्दुल लतीफ उसके प्रथम शिक्षक थे जिनसे दारा ने कुरान, तैमूर का इतिहास तथा फारसी काव्य की शिक्षा ग्रहण की तत्कालीन इस्लामिक शिक्षा पद्धति में खुशखती (सुलेख) पर अधिक बल दिया जाता था अत: दारा ने ये सभी शिक्षायें प्राप्त की परन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य ये है कि दारा ने अब्दुल लतीफ के माकूलात रुझान अपने स्वभाव से आत्मसात कर लिए १७वीं शताब्दी के मध्य तक हिन्दुस्तान के इस्लामिक विचारों में परिवर्तन हो रहे थे एक ओर अकबर के समन्वयवादी विचार थे जिनके मार्गदर्शक विद्वान शैख अहमद सरहिन्दी थे, दारा के विचारों के अध्ययन के लिए यह पृष्ठभूमि अति महत्वपूर्ण है दारा शिकोह स्वभावत: आध्यात्मिक प्रवृति का इन्सान था भारतीय इस्लामिक जगत का भी इन दो विचारधाराओं में ध्रुवीकरण हो रहा था, अपने आध्यात्मिक विकास के आरंभिक चरण में दारा क़ादिरी सिलसिले का रुढ़िवादी रहस्यवादी सूफ़ी था वह क़ादिरी सूफ़ी मिया मी तथा मुल्लाशाह बदक्शी का मुरीद था, यदि शाहजहाँ के दरबारी इतिहासकार अब्दुल हमीद की मानें तो इस दौरान राजकुमार दारा सूफ़ी संतो की गहरी संगत करने लगा संतों की कुटियों में जाने लगा लाहौर

* एसोसिएट प्रोफेसर, वी०के०एम०, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक २०१७, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

प्रवास के दौरान् इन गूढ़ द्रष्टा सूफ़ी संतों की संगति का प्रभाव था कि उसकी आध्यात्मिकता बेचैन हो उठी धार्मिकता और विवेकशील हों उसने स्वंय अपनी पुस्तक *रिसाले हक़नुमा* में स्वीकार कि उसको ईश्वर प्राप्ति का वचन प्राप्त हुआ है।[२] वास्तव में सत्य यह है कि इस काल में अत्यंत भक्तिभाव जागृत हुआ तथा वर्ष १६३५ में इस्लाम के संतों विद्वानों की जीवनियों पर उसने यह विशाल ग्रन्थ लिखा. यद्यपि मुगल बादशाहों की चिश्तिया सिलसिले में गहरी आस्था थी अपने जीवन काल में सम्राट अकबर ने १४ बार अजमेर की यात्रा की तथा जियारत की थी शैख़ सलीम चिश्ती के आर्शीवाद के फलस्वरूप उसे शहजादा दानियाल, शहजादा परवेज तथा सिंहासन के उत्तराधिकारी के रूप में शहजादा सलीम भावी सम्राट जहांगीर के रूप में इनायत हुए थे। स्वयं दारा भी चिश्तिया सम्प्रदाय का अनुयायी था किन्तु मियां मीर की दानशीलता, मानवमात्र के प्रति उनकी करुणा, उच्च सेवाभाव से वह प्रेरित हुआ, क्योंकि शैख़ के विचार उसके आध्यात्मिक स्वभाव से मेल खाते थे तत्पश्चात् उसकी मुल्लाशाह बदक्शी के प्रति श्रद्धा हुई अपनी पुस्तक *सफीनत–उल–औलिया* में वह कादिरी मार्ग को मुक्ति का सर्वोत्तम मार्ग बताता है।[३] इन पुस्तकों से दारा का धार्मिक दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। इस काल में उसने जो ध्यानविधि, उसके फल, ईश्वर और उसका विश्वदेववाद अर्थात् वहदत–उल–वुजूद आदि की जो अवधारणा विकसित की थी उसकी जानकारी हमें इन पुस्तकों से प्राप्त होती है।

यही वह समय था जब उप–महाद्वीप में कादिरी सिलसिले में भी परिवर्तन हो रहे थे इस समय कादिरी सिलसिला उदारवादी दौर से गुजर रहा था एक ओर दारा प्रसिद्ध मुसलमान सूफ़ी संत मुहिब उल्लाह तथा लिसान अल्लाह रुस्तकी की सोहबत में था तो दूसरी ओर पण्डित जगन्नाथ मिश्रा तथा बाबा लाल वैरागी जैसे हिन्दू रहस्यवादी संतों के प्रभाव में था।

निसंदेह दारा एक पक्का मुसलमान था पैगम्बर में उसकी सच्ची आस्था थी डॉ० कानूनगो का मत है कि दारा स्वयं को मुगल सिंहासन का भावी सम्राट एवं शहंशाह अकबर का उत्तराधिकारी मानता था अत: उसने इस्लाम के समन्वयकारी सिद्धान्तों का निर्माण किया। क़ादिरी सिलसिले की ओर से इसका कोई विरोध भी नहीं हुआ।[४] उसने विश्वदेववाद तथा अवतरण (अवतार) के सिद्धान्त को अपने संप्रदाय के अनुसार प्रस्तुत किया। पैगम्बर भी एक हिन्दू देवता के समान थे; क्योंकि आत्मा वायु से भी सूक्ष्म है और कोई भी पदार्थ उसकी गति में बाधा नहीं डाल सकता और न चेष्टा में आवरण कर सकता है तो आश्चर्य की क्या बात है कि इस जगत के अग्रणी ने स्वर्ग की अपनी प्रसिद्ध यात्रा अपने सूक्ष्मीकृत अरीर से की?

अल्लाह समस्त नामों में उच्चतम व श्रेष्ठ है फिर चाहे वह मुसलमान हो या हिन्दू अल्लाह के नाम का जाप सभी को प्रेम व भक्ति से करना चाहिए।

रिसाले–हकनुमा में हारा कुछ क्रियाओं का उल्लेख भी करता है जो पैगम्बर मुहम्मद द्वारा अंगीकृत थीं जैसे हारा की गुफा में प्राणायाम ध्यान के समय वह अपने मन को विभिन्न केन्द्रों (हिन्दू योगियों के चक्रों) पर एकाग्र करते थे उनको ज्योति के दर्शन होते तथा वे संगीत सुनते यद्यपि दारा इन सिद्धान्तों के मौलिक होने का दावा नहीं करता इन विद्याओं के अस्पष्ट उल्लेख हमें सूफ़ी साहित्य में मिलते हैं[५] दारा के अनुसार आत्मा का प्रकृति में अवतरण एक विचार है परन्तु सूफ़ी संप्रदाय की शास्त्रीय विचारधारा को अमान्य थे। इस्लामिक रहस्यवाद के अन्तर्गत ईश्वर के एकत्व का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना तत्पश्चात् ईश्वर के एकत्व का साक्षात्कार एक प्रमुख उद्देश्य है। तौहीद दारा के जीवन का प्रमुख उद्देश्य बना रहा। ज्ञान और ध्यान दारा उसका साक्षात्कार उसके आध्यात्म का प्रमुख उद्देश्य बन गया। सफ़ीनत–उल–औलिया में वह कहता है कि मेरा एक मात्र आश्रय तेरी दया है।[६] अत: दारा ने तौहीद की प्राप्ति के लिए अनेक संतों के पास जाना आरम्भ कर दिया। अनेक घाटों पर पानी पिया (मशरब) परन्तु यह एकत्व उसे बुद्धि ज्ञान से प्राप्त नहीं हुआ दारा स्वीकार करता है कि यह उसे रहस्यमय प्रेम के आवेश में प्राप्त हुआ। मुल्लाशाह दिलरुबा को लिखे गये पत्रों में वह अपनी आध्यात्मिकता की अवस्था का वर्णन करता है। दारा अनुभव करता है कि बोध में एक स्थिति ऐसी आती है कि जब कोई सूफ़ी स्वंय को भूल जाता है तो उसे केवल प्रभु ही दिखाई पड़ते हैं। वास्तव में दारा के अनुसार यह आध्यात्मिक आरोहण (उरुज़) है। आध्यात्मिक आरोहण के शिखर पर पहुँच कर उसे धर्मान्धता तथा अज्ञान कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। वह स्वयं कहता है कि उसके हृदय से वाह्य इस्लाम गायब है और वास्तव में 'तू' ही सत्य है। इस प्रकार दारा का बोध अन–अल–हक[७] (मैं ईश्वर हूं), 'मैं सत्य हूँ' था 'अहं ब्रहमास्मि' जो वेदान्त का केन्द्रविन्दु है अब दारा सत्य के अनुसंधान में अन्य प्रामाणिक धर्मग्रंन्थों के अध्ययन में डूब गया। समाज ने उसे अलकामिल माना वास्तव में अनेकत्व में एकत्व की अंतिम अवस्था में दारा प्रवेश कर गया। अल्लाह पैगम्बर व कुरान के अतिरिक्त अब सब

बाह्य अंग दारा के रहस्यवाद में विलीन हो गए।

दारा शिकोह कादिरी संप्रदाय का मुरीद था। अत: अपेक्षा थी कि कुछ विशेष प्रकार के वस्त्र पैबंद लगा घाघरा पहनेगा जो उसने शायद ही कभी पहना हो। कुछ नीयत कर्मकाण्डों का पालन करेगा। वास्तव में दारा अल्लाह के जाप पर बल देता है। वह कर्मकाण्ड के स्थान पर नैतिकता को सर्वोपरि मानता है वह लिखता है कि इस्लाम की आत्मा त्याग की है अनासक्ति की नहीं है।[४] क़ादिरी संप्रदाय के अन्तर्गत अल्लाह का जाप करते हुए ध्यान की क्रियाएं तजवीज की गई हैं दारा लिखता है कि यद्यपि ये क्रियाएं उसने अपने पीर मियां मीर से छ: महीने में ही सीख ली थी तथा अपने शिष्यों को भी इनका प्रशिक्षण दिया था तीन अथवा चार दिनों में ही उन्हें आत्मा का प्रकाश दिखाई देने लगा तथा अनहद सुनाई दिया परन्तु यह युग मध्य युग था जब कि राजा की मर्जी के मुताबिक प्रजा या शिष्य वही करें जैसा राजा चाहे।

दारा के अति आत्मविश्वास, धार्मिक उत्साह तथा इन्सान की पहचान के अभाव में जो आध्यात्मिक निर्देशन हुआ उसके फलस्वरुप भविष्य के प्रभावहीन राजनीतिज्ञ तथा महत्वहीन सैनिक दारा के आसार दृष्टिगोचर होते हैं।

एक सच्चा मुसलमान एकेश्वरवादी होता है उसके हृदय में सदा अपनी उस नीच प्रवृति (नफ्स) तथा वाह्य जगत के अन्य तत्वों से जेहाद चलता रहता है जो इस एकत्व को नहीं मानते हैं जबकि सूफ़ी का प्रेम जीवन व मृत्यु में किसी वियोग से ऊपर, जीवन के ज्वार भाटे से परे हैं वह इस 'एक' व अनेक की समस्याओं का अपने निर्वाहक प्रेम से अंत कर देता है दारा के विचार में अनेकेश्वरवादी तथा एकेश्वरवाद में परस्पर मैत्री सम्मेलन इसी आधार पर ही संभव है. दारा का मानना था कि धर्म तो अनेक हैं परन्तु ईश्वर एक ही है मार्ग भिन्न हैं परन्तु उद्देश्य एक ही है एक ही अस्तित्व को देखने में हिन्दू और मुसलमानों के मध्य दृष्टिकोण का भेद है।[५] इसी भेद, मतभेद व समस्या को सुलझाने के लिए दारा ने मज्म–अल–बहरीन नामक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक की रचना की। मज्म–अल–बहरीन अर्थात् दो महासागरों का मिलन मुसलमान का एकत्व और हिन्दू का अनेकत्व। दारा अपने 'मज्म' में लिखता है कि मनुष्य वास्तविकता पर सहमत है। सदा से छाया के लिए रक्तपात करता आया है अपने गूढ़ अध्ययन के फलस्वरूप दारा सूफ़ी विचार के द्वितीय चरण में प्रवेश कर गया। वह यह विचार प्रस्तुत करता है कि तंजीह तथा तशबीह निर्गुण तथा सगुण भाव उसी परमात्मा के प्रकटीकृत रूप तथा आत्मसीमितीकरण के रूप हैं यदि कोई भक्त इसे पृथक कर के देखता है तो उसे एकत्व तथा ज्ञान (तौहीद व ईफ़ान) का आर्शीवाद नहीं प्राप्त होगा।[६] तत्पश्चात् एक सूफी भक्त सहवल–जम अर्थात् शुद्ध एकत्व से बहुत्व तथा संयोग में भी वियोग को प्राप्त कर लेता है। वह सूफ़ियों के चारों लोगों की व्याख्या करता है। उरुज (आरोहण), आलम–ए–नसूत (संसार), आलम–ए–मलकूत (मनोभावों का संसार), आलम–ए–जबरुत (आनन्द संतोष की स्थिति) और अंत में आलम–ए–हब्बियात अर्थात् ईश्वर का लोक परन्तु स्वयं दारा पूर्णतया प्राप्त नहीं कर सका।

अपने अंत समय तक दारा *शरियत* के प्रति उदासीन रहा। दारा शिकोह का विचार था कि सत्य (हकीकत) के साक्षात्कार के पश्चात् इन सब विधि नियमों का पालन आवश्यक नहीं है। मनुष्य स्वयं कामिल–पूर्ण पुरुष हो जाता है। मुसलमान एकेश्वरवादियों ने उस पर अनेकेश्वरवादी का आरोप लगाया। वास्तव में दारा को अपने पर अति आत्म विश्वास था अत: उसने तौहीद (एकत्व) के सिद्धान्त को एक धर्म का रूप दे दिया। वह अपनी सोच तथा जिज्ञासा को ही मानते हुए अविश्वास तक पहुँच गया।

वास्तव में दारा ने अपने परि–पितामह बादशाह अकबर के समान हिन्दू एवं मुसलमानों के मध्य समन्वय का मार्ग निर्मित करने का एक प्रयास किया था दोनों धर्मों में सृष्टि रचना के सम्बन्धों में जो सादृश्य है उन्हें बीन–बीन कर निकालना उन्हें विश्वसनीय बनाना यह कार्य भक्त शहजादे दारा शिकोह के लिए कठिन अवश्य था। तिमूरी परम्परा में वह पहला और अंतिम दार्शनिक विद्वान शहजादा था उसने अनुसंधान का एक ऐसा मौलिक मार्ग तलाशने का प्रयास किया था जिसका अनुसरण करके जनसाधारण के मध्य धार्मिक सामाजिक सौहार्द स्थापित किया जा सके वह मार्ग जो आज भी देश के लिए अपेक्षित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

[१] *पादशाहनामा,* I 391

[२]

[३] बादशाहनामा, पृ० १९०

[4]Rizvi, *History of Sufism,* II pp. 480

[५]वही, I pp. 327&8

[६]*एस०सी०बसू० द्वारा अनुदित सफीनत–उल–औलिया का परिचय परिच्छेद*

[७]*सिर्रे–अकबर,* परिचय परिच्छेद

[८]*मज्म–उल–बहरीन,* पृष्ठ संख्या २७

[९]वही

[१०]*रिसा ल–ए–हकनुमा*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,38-39**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 09 मई 2017

गुप्तकाल में धातु उद्योग

डॉ० विजया तिवारी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *गुप्तकाल में धातु उद्योग* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *विजया तिवारी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

खनिज विद्या तथा अयस्कों से धातुओं को प्राप्त करने की तकनीक की जानकारी को मौर्य युग में वैज्ञानिक आधार प्राप्त हो गया था और अनुवर्ती कालों में खनिज विद्या एवं धातुकर्म में निरन्तर उन्नति होती गयी। उपयोगिता तथा उपलब्धता की मात्रा के अनुसार विभिन्न धातुयें विविध वस्तुयें बनाने में प्रयुक्त होती थी। गुप्त काल में लगभग सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों में तकनीकी ज्ञान का अभूतपूर्व विकास हुआ था और धातुकर्म ने भी पूर्ववर्ती कालों की अपेक्षा अधिक विकसित रूप प्राप्त किया था। सिक्कों मोहरों (*seals*) तथा ताम्रपट्टों पर उत्कीर्ण किये गये लेखों एवं अभिप्रायों आदि के अंकन में धातु शिल्पियों की अत्यन्त उच्च स्तर की कारीगरी दिखाई पड़ती है। विभिन्न धातुओं के मिश्रण में भी धातुकार दक्ष थे।

गुप्तकाल के साहित्यिक साक्ष्यों में खानों के कई उल्लेख मिलते है।[१] खानों पर राज्य का एकाधिकार होता था जैसा कि वाकाटक रानी प्रभावती गुप्ता के पूना ताम्रपत्र[२] से तथा प्रवरसेन द्वितीय के सिवानी एवं चम्मक ताम्रपत्रों[३] के साक्ष्य से प्रामणित होता है वराहमिहिर ने खानों को किसी भी देश की समृद्धि का स्रोत माना है।[४] जबकि वात्स्यायन के कामसूत्र में धातुवाद को ६४ कलाओं में शामिल किया गया है।[५]

गुप्त शासकों ने सोने, चांदी तथा तांबे के सिक्के जारी किए थे। कुषाणों के बाद चन्द्रगुप्त प्रथम तथा इसके बाद के सभी गुप्त शासकों ने स्वर्ण मुद्रएं चलाई जो बड़ी संख्या में प्राप्त हुई है। चंद्रगुप्त द्वितीय ने अकों पर विजय प्राप्त करने के बाद अकों द्वारा शासित प्रदेशों में अपने नाम से चांदी के सिक्के चलाए। कुमारगुप्त प्रथम, स्कंदगुप्त तथा बुधगप्त ने भी रजत मुद्राएं जारी की थी। जबकि तांबे के सिक्के केवल रामगुप्त, चंद्रगुप्त द्वितीय तथा कुमारगुप्त प्रथम ने चलाये। इनमें रामगुप्त के लगभग २००० तांबे के सिक्के प्राप्त हो चुके हैं। परन्तु अन्य गुप्त शासकों के तांबे के सिक्के बहुत कम संख्या में मिले हैं। सोने का उपयोग अधिकांशत: आभूषणों एवं सिक्कों के निर्माण में किया जाता था। समृद्ध लोग इसके बर्तनों एवं अन्य वस्तुओं का प्रयोग करते थे। सोना पलंग, राजसिंहासन एवं अन्य वस्तुओं में भी जड़ा जाता था।

गुप्तों की स्वर्ण मुद्राओं में राजा–रानी देवी–देवताओं की आकृतियों और लेखों का अंकन स्वर्णकारों की कला की उत्कृष्टता

* प्रवक्ता, प्रा०भा०इ० विभाग, डिग्री कॉलेज (उपरदहाँ) बरौत, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक २०१७, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। भारत में चांदी अत्यन्त अल्पमात्रा में ही शायद उपलब्ध हो पाती रही होगी। कनिंघम के अनुसार किसी भी भारतीय साक्ष्य में चांदी की खानों का उल्लेख नहीं आया है।[६] परन्तु वराहमिहिर ने चांदी की खानों (रजताकार) का स्पष्ट विवरण दिया है। ह्वेनसांग ने भी इसकी पुष्टि की है। इस आधार पर अजयमित्र शास्त्री का मानना है कि गुप्त एवं गुप्तोत्तर कालों में भारत में चांदी का उत्पादन होता था। वराहमिहिर ने चांदी के लिए रजत तथा रूप्य शब्दों का प्रयोग किया है। चांदी के पात्र एवं अन्य मूल्यवान वस्तुएं बनाई जाती थीं।

अमरकोश में लोहे के सात नाम बतलाए गए हैं– लोह, अस्त्रक, तीक्ष्ण, पिंड, कालायस, अय एवं अश्मसार। लोहार को लोहकारक तथा व्योकार कहा गया है। चतुर्भाणी में धातुकार की कार्यशाला (कर्मान्त भूमि) तथा धातुओं के बाजार (कर्मार विर्पाण) के उल्लेख मिलते हैं। बृहत्संहिता के टीकाकार उत्पल के अनुसार लोह अब्द लोहे के अतिरिक्त कांसे का भी द्योतक था।

लोहे के हल–फाल, फावड़ा, हंसिया, जंजीर, कुल्हाड़ी, छेनी, कैंची, बर्तन, उपकरण तलवारें तथा अन्य वस्तुएं बनाई जाती थी।

पुरातात्विक उत्खननों में गुप्त काल के स्तर से लोहे के हथौड़े, विभिन्न प्रकार की छेनियां, कुल्हाड़े, कटार, परशु तथा अन्य वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। इस काल के लौह कर्म की विकसित तकनीक का सर्वोत्तम उदाहरण कुतुबमीनार के निकट मेहरौली का लौह स्तम्भ है जिस पर चंद्र नाम के राजा का एक लेख उत्कीर्ण है। २३ फुट ऊंचे तथा १६ फुट ४ इंच व्यास वाले इस स्तम्भ का अनुमानित भार ६ टन से अधिक है। इसे एक ही लौहखंड को ढालकर बनाया गया था। लगभग १५०० वर्ष बीत जाने के बाद भी इसमें कोई खराबी नहीं आई है।

सन्दर्भ

[१] *रघु,* ३.१८,' १७.६६,' १८.२२,' अमर,' ३,३.७

[२] *प्रभावती गुप्ता का पूना दानपत्र,* से.ई. १, पृष्ठ संख्या ४११–१५.

[३] *प्रवरसेन द्वितीय के चम्मक एवं सिवानी दानपत्र* (सी.आई.आई. ३, पृष्ठ संख्या २३५–४९)

[४] *बृहत्सं.,* १९, ६–७

[५] *दृष्टव्य,* मैनी, इकोनॉमिक लाइफ, पृष्ठ संख्या १३४

[६] *वाटर्स,* १, पृष्ठ संख्या १७८

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,40-42**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 30 दिसम्बर 2008

मालेगाँव तहसिल में 'भारत छोड़ो आन्दोलन'

प्रा० खैरनार कैलास कारभारी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मालेगाँव तहसिल में 'भारत छोड़ो आन्दोलन'* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *प्रा० खैरनार कैलास कारभारी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

महात्मा गांधीजी के नेतृत्व में शुरु हुए आंदोलन में मालेगाँव तहसिल सक्रिय था। इस आंदोलन में मालेगाँव तहसिल कुल ३२ लोगों को गिरप्तार किया गया था। 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में सहभागी हुए कार्यकर्ताओं को सरकार ने जब गिरप्तार करना शुरु किया, तो उस समय कुछ कार्यकर्ताओं ने भूमिगत होकर अपना काम किया था। ग्रामीण क्षेत्र की जनता ने भी इस आंदोलन में सहभाग लिया था। इस आंदोलन में ब्रिटिश सरकार के खिलाफ गुस्सा तिरस्कार प्रकट करके आजाद होने का दृढ़ निर्णय किया था। भारतीयों को अब आजादी देनी पड़ेगी इसकी जानकारी अब ब्रिटिशों को हो चुकी थी। भारत में ब्रिटीश में सत्ता हुकुमत को इस आंदोलन से बड़ा धक्का लगा था। इस आन्दोलन मालेगाँव तालुका के जनता की वीरता और लड़ाकुपन की अद्वितीय मिसाल थी।

महाराष्ट्र राज्य के ३५ जिलों में से नासिक यह इतिहास प्रसिद्ध जिला है। नासिक जिले के कुल क्षेत्रों में से १२ प्रतिशत क्षेत्र फैला हुआ है। मालेगाँव तालुका यह सबसे बड़ा तालुका है। नासिक शहर से लगभग १२० कि०मी० दूरी से मालेगाँव शहर है; और मनमाड रेल्वे स्टेशन से लगभग ३२ कि.मी. की दूरी पर है। वैसे मालेगाँव मौसम समिश्र स्वरुप का है। इ०स० १० वे शतक में महाराष्ट्र में राष्ट्रकुल घराना राज्य करता था। उस समय मालेगाँव यह एक छोटा–सा गाँव खेड़ा देहात था। उस समय के काल में अनेक तरह तरह के राज्यकर्ताओं के अधीन वर्चस्व में यह परिसर गया हुआ था। ब्रिटीश ने १४ जून १८१८ में मालेगाँव परिसर क्षेत्र अपने कब्जे में लेकर अपनी सत्ता का निर्माण किया।

भारत की आजादी के लिए जिन्होंने अपने और अपने परिवार की आशा – आकांक्षाओं को मिटाकर इस आजादी के लिए योगदान दिया और अपना सहयोग दिया; इसीलिए उनका इतिहास बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस आजादी की लोगो ने अपने वर्चस्व का दान किया। इ०स० १८५७ उठाव से आजादी की लड़ाई के विचारो से एक अखंड मालिका ही नजर में आती है। तब

* कला, महाविद्यालय सौंदणे (ता0 मालेगाँव) नासिक (महाराष्ट्र) भारत। (पुनः प्रकाशन)

© लेखक २०१७, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

से लेकर पढ़े–लिखे सुशिक्षित मध्यम वर्गीय संघटीत होकर ब्रिटीश सरकार का विरोध करने के लिए प्रांतिक स्तर पर बॉम्बे असोशिएशन, मद्रास महाजन सभा, पूणे सार्वजनिक सभा, बंगाल असोशिएशन ऐसे संस्थाओं की स्थापना की गई थी। उन्हीं के कामो से इ०स० १८८५ में राष्ट्रीय सभा की स्थापना की गई।

राष्ट्रीय सभा के कार्यकर्ता लोकमान्य तिलक जी की मृत्यु के बाद इस सभा का नेतृत्व महात्मा गांधी जी के पास दिया गया, और इस समय से ही गांधी युग की शुरुवात हुई। भारत की आजादी के लिए उनके नेतृत्व में असहकार, सविनय कायदे भंग, भारत छोड़ो आन्दोलन, सत्याग्रह, ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध में किया गया। इस समय राष्ट्रीय सभा मुट्ठीभर सुशिक्षितों के अधीन न रहकर वह सभी सर्वसामान्य जनता तक जाकर पहुँच गई।

ब्रिटिश विरोधी आजाद आंदोलन की दिशा तय करने के लिए राष्ट्रीय सभा की कार्यकारिणी बैठक ६ जुलाई १९४२ रोज सेवाग्राम वर्धा यहाँ पर आयोजित की गई। जब इस बैठक में सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो आंदोलन' का निर्णय तय किया गया। उस प्रस्ताव को भुलाभाई देसाई और राजगोपलचार्य इन्होंने विरोध किया, लेकिन उनके विरोध को न मानकर दूसरे सदस्यों ने १४ जुलाई १९४२ के दिन भारत छोड़ो इस निर्णय को स्वीकृति दी गई। इस अनुशंग से जिल्हा स्तर पर कार्यकर्ताओं की बैठक ली जाने लगी। तब १ अगस्त १९४२ के दिन नासिक यहाँ पर अच्युतराव पटवर्धन इनका व्याख्यान था। इस बैठक में मालेगाँव के या०ना० जाधव भी मौजूद थे। वहाँ से वापस आने के बाद उन्होंने मालेगाँव में डी–स्कोर्ड स्थापन करके तारों को काटना, डाकघर की पेटी को लेकर भागना, इन छापामार गतिविधियों को अपना कर उन्होंने इस आन्दोलन की शुरूआत की थी।

ब्रिटिश विरोधी व्यापक आंदोलन शुरू करने के निर्णय लेने के लिए ७ अगस्त १९४२ के दिन मुंबई में राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन लिया गया। उस समय आजाद मैदान पर ८ अगस्त १९४२ के रोज 'भारत छोड़ो' आंदोलन का प्रस्ताव पास किया गया। और पूरी स्वतंत्रता मिलने तक यह लड़ाई खत्म नहीं होगी ऐसा जाहीर ऐलान किया गया। तब ब्रिटिशो ने भी इस चुनौती को स्विकार कर जनता को डराने के लिए अपने अस्त्र–शस्त्र निकाले थे।

गांधी जी के साथ राष्ट्रीय सभा के २५ कार्यकर्ताओ को बंदी बनाया गया। इस आंदोलन में मालेगाँव तालुका ही अग्रेसर हुआ था। और मुंबई के अधिवेशन में उपस्थित रहने के लिए मालेगाँव तालुका से भी कुछ लोग गए थे। उनको वापस आने तक मालेगाँव में या०ना० जाधव के नेतृत्व में राष्ट्र सेवादल के सैनिकों ने आंदोलन शुरु किया। इस प्रकार से इस आंदोलन की सीमा व्याप्ती बढ़ती गई। मालेगाँव शहर में १० अगस्त १९४२ के दिन ब्रिटिश के खिलाफ जुलूस निकाला गया। उस जुलूस का नेता बी०एम० भावसार को हिरासत में ले लिया गया। उसके बाद १२ अगस्त १९४२ के रोज सुरक्षा जवानों की निकलने वाली परेड को जनता ने असफल किया था। उसी दिन रात को केशवलाल दगडूसा गुजराती इनकी सभा हुई। उसके बाद १३ अगस्त १९४२ के दिन भाऊसाहेब हिरे भूमिगत अवस्था में मुंबई से मालेगाव वापस आये। तभी से ग्रामीण क्षेत्रो में भी आंदोलन की शुरुवात होनी चाहिए। इसीलिए विचार विनीमय के लिए कॉग्रेस के स्थानिक लोगों ने १४ अगस्त १९४२ के दिन मालेगाव शहर के पाच कंदिल चौक में भाऊसाहेब हिरे इनकी सभा का आयोजन किया गया था। इस सभा में गांधी जी का संदेश सुनने के लिए जनता गर्दी की थी। उस समय सभा की जगह या०ना० जाधव तिरंगा लेकर 'वन्दे मातरम' 'महात्मा गांधी की जय', 'भारत छोड़ो' इस प्रकार के नारे लगाते हुये सभा का नियोजन कर रहे थे। सभा की शुरुवात होते ही कुछ ही समय में वहाँ मौजूद पुलिस ने लाठीमार किया तब जनता ने भी उसका प्रतिकार करना शुरु किया होता लेकिन पुलिसों ने अचानक बंदूकों से २५ गोलियो की फायरिंग शुरु की उस फायरिंग से १६ लोग जख़्मी हो गये थे और भाऊसाहेब हिरे इनको हिरासत में ले लिया गया। सभा का नियोजन करनेवाले कार्यकर्ता या०ना० जाधव वहाँ से बड़ी चालांकी से भूमिगत होकर मालेगाँव शहर छोड़ दिया था। १५ अगस्त १९४२ के दिन निमगाव यहाँ राष्ट्रीय ध्वज का कार्यक्रम करके भाषण किया। उसके बाद भूमिगत अवस्था में होने के कारण मालेगाँव शहर से १० मिल दूरी पर जंगल में सत्याग्रह आंदोलन की योजना तैयार करते हुए १७ अगस्त १९४२ के दिन या०ना० जाधव उसके साथियों के साथ पकड़ा गया। तब मालेगाँव न्यायालय ने उन्हें १ साल की सक़्त मंजूरी की सजा सुनाकर उनको धुलिया जेल में भेजा गया। वहाँ से विसापूर और येरवड़ा जेल में रवानगी कर दी गई। इन कार्यकर्ताओं को हिरासत में लेने के बाद भी मालेगाँव में आंदोलन चल रहा था।

नासिक यहाँ के कार्यकर्ताओं ने मालेगाँव शहर में आकर २० अक्टूबर १९४२ के दिन जुलूस निकाला था। इसके बाद २ नवंबर १९४२ को मालेगाँव शहर के पोलिस मुख्यालय में छोटा सा बॉम्ब रखा गया था। इसी दिन पोस्ट ऑफिस के पेटियों को भी ले जाया गया था। फिर २७ जनवरी १९४३ के दिन मालेगाँव शहर में हड़ताल की गई थी। ८ मार्च १९४३ के दिन मालेगाँव तालुका के जलगाँव यहाँ के प्राथमिक स्कूल से रजिस्टर को लेकर भगाया गया था। उसके बाद अप्रैल १९४३ में पिंपलगाव और टेहरे इस गाँव के स्कूल से रजिस्टर और कुछ सामान हस्तगत किया था। उसके बाद ८ अगस्त १९४३ को कुंदलगाव देहात के नजदीक टेलिफोन के खम्बों को गिराकर उसके तारों को काटा गया था।

२६ जनवरी १९४४ के दिन मुस्तफा जानु मोमीन और भिकन आनंदा पवार इसके पास मालेगाँव के गुड़ बाजार परिसर में ब्रिटिश विरोधी पत्रक और बुलेटिन होने के वजह से वही पकड़े गये थे; इसलिए उनको गिरफ्तार किया गया। इन सभी कार्यकर्ताओं की जेल से छूटने के बाद वह इस आजादी के आंदोलन में शामिल हुए थे। या०ना० जाधव इन्होंने भूमिगत कार्यकर्ताओ को अभय देने के लिए अपने मकान को ही लोकश्रय नाम का बोर्ड लगा दिया था। वहाँ पर रहने वाले भूमिगत कार्यकर्ताओं से आजादी के आंदोलन के बारे में विचार–विमर्श करके सर्व सामान्य लोगों को प्रोत्साहन देते थे।

संदर्भ ग्रंथ

कुंटे भ०ग० (१९७९)– स्वातंत्र्य सैनिक चरित्रकोश, पश्चिम महाराष्ट्र, खंड–१ दर्शनिका विभाग, महाराष्ट्र राज्य, मुंबई–१ आवृत्ती–प्रथम
केळकर श्रीपाद (१९८३)– छोड़ो भारत १९४२, कॉन्टीनेटल प्रकाशन पूणे –३० आवृत्ती –प्रथम
गव्हर्नमेंट ऑफ बॉम्बे, डिपार्टमेंट स्पेशल ब्राँच फाईल नं० १११० (४)डी (१८) दि० ११ अगस्त १९४२
गव्हर्नमेंट ऑफ बॉम्बे, डिपार्टमेंट स्पेशल ब्राँच फाईल नं० १११० (६) डेली रिपार्ट दि० ११ अगस्त १९४२
गव्हर्नमेंट ऑफ बॉम्बे, डिपार्टमेंट स्पेशल ब्राँच फाईल नं० १११० (६)ए (१२) दि० १७ अगस्त १९४२
गव्हर्नमेंट ऑफ बॉम्बे, डिपार्टमेंट स्पेशल ब्राँच फाईल विकली रिपार्ट, दि० १९ अक्टूबर १९४२
गव्हर्नमेंट ऑफ बॉम्बे, डिपार्टमेंट स्पेशल ब्राँच फाईल विकली रिपार्ट, दि० १२ अप्रैल १९४३
गव्हर्नमेंट ऑफ बॉम्बे, डिपार्टमेंट स्पेशल ब्राँच फाईल डेली रिपार्ट, दि० ११ जनवरी १९४४
पवार बाबुराव फकीरा – सोनहिरा, प्रताप प्रकाशन नासिक, आवृत्ती–प्रथम २००४
भामरे के०जी०, जाधव एम०डी० (संपा) –व्यक्तिविशेष पुस्तिका, विश्व भारती मुद्रणालय, मालेगाव, अगस्त –१९७६

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008 भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,43-44**
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777 प्रकाशनार्थ स्वीकृत 25 मार्च 2017

मध्यप्रदेश की दरबारी परम्परा

डॉ० निधि श्रीवास्तव*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मध्यप्रदेश की दरबारी परम्परा* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *निधि श्रीवास्तव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

तबले की विभिन्न परम्पराओं में मध्यप्रदेश की विविध दरबारी परम्परायें भी प्रसिद्ध हैं विभिन्न शहरों में दरबारी पंरम्पराओं का अपना अलग ही महत्व था। संपूर्ण संगीत जगत जिन पर गौरव कर सके ऐसे महान कलाकार विद्वान, संगीत प्रोत्साहक एवं गुणग्राही शासकों से मध्यप्रदेश की धरती समृद्ध है। यहाँ की रियासतें जैसे कि ग्वालियर, रीवा रायगढ़, दतिया, इन्दौर, मैहर, उज्जैन, जावरा, रतलाम, देवास, धार, सागर, बुरहानपुर आदि संगीत के लिये सुप्रसिद्ध है। यहाँ के गुणग्राही शासकों ने संगत एवं संगीतकारों को सदा प्रोत्साहन एवं आश्रय दिया। ग्वालियर के राजा मानसिंह, मांडव की रूपमती बाजबहादुर तथा रायगढ़ के महाराज चक्रधरसिंह जैसे संगीतानुरागी, संगीतज्ञ राजाओं ने इस प्रदेश को गौरवान्वित किया है। संगीत जगत को इस प्रदेश ने ऐसे–ऐसे समर्थ कलारत्न भेंट किये हैं जो अपने क्षेत्र में अजर–अमर हैं। तानसेन को भला कौन भूल सकता है। तानसेन के उपरान्त पिछली दो तीन सदियों में वहाँ कुछ विशिष्ट प्रतिभाएँ इतनी समर्थ सिद्ध हुई हैं कि जिनके द्वारा नवीन परम्पराओं तथा घरानों का भी आविष्कार हुआ है। विश्वविख्यात बाबा अलाउद्दीन खाँ, उस्ताद अली अकबर, पं० रविशंकर, पं० कुमार गंधर्व आदि कलारत्न मध्यप्रदेश की ही देने है।

ग्वालियर के राजा मानसिंह और संगीत सम्राट तानसेन तथा मांडव के राजा बाजवहादुर और रानी रूपमती से लेकर आधुनिक युग के सैकडों कलाकार जिनमें मैहर के उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, उस्ताद अली अकबर खाँ, पं० रविशंकर, श्रीमती अन्नापूर्णा देवी के उपरान्त इन्दौर के उस्ताद अमीर खाँ जावरा के उस्ताद अब्दुल आष्टेवाले, देवास के रज्जबअली तथा पं० कुमार गांधर्व, उस्ताद बन्दे अली खाँ बीनकार, उस्ताद आबीद हुसैन खाँ, उस्ताद हस्सू खाँ, उस्ताद हस्सू खाँ, उस्ताद बड़े मोहम्मद खाँ, उस्ताद हाफिज अली, पं० नत्थन पीरबख्श खाँ, उस्ताद निसार हुसैन खाँ, उस्ताद अजमत खाँ, उस्ताद हाफिज अली, पं० एकनाथ, पं० शंकरराव, पं० कृष्णराव शंकर पंडित, पं० राजा भैया पूंछवाले, पं० बाबा साहेब पूंछवाले, रायगढ़ के महाराज चक्रधर सिंह, मृदंग सम्राट, कुदऊसिंह, महाराज मृदंगाचार्य नाना पानसे, ग्वालियर पं० जोरावर सिंह, पं० सुखदेव सिंह, पं० पर्वतसिंह रायगढ के मृदंगवादक ठाकुर लक्ष्मणसिंह ठाकुर, जगदीश सिंह, दुर्गाप्रसाद कत्थक, पं० कार्तिकराम कथक तथा शास्त्रकार श्री शरदचन्द्र

* सहायक प्रोफेसर, एस0एस0खन्ना महिला महाविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : drnidhisrivastava1@gmail.com

© लेखक २०१७, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

परांजपे एवं श्री प्यारेलाल श्रीमाल का समावेश भी इनमें हो जाता है।

ध्रुपद के डागुर घराने के प्रपितामाह उस्ताद बहेराम खाँ डागुर इन्दौर के रहने वाले थे। अत: उस्ताद नासिरूद्दीन डागुर वर्षो पर्यन्त इन्दौर दरबार के मुलाजिम रहे। महाराजा तुकोजी राव के दरबारी कलाकारों में ध्रुपदिये नासिरूद्दीन डागुर, पखावजी पं० सखाराम पन्त अगले, उस्ताद बाबू खाँ बीनकार, उस्ताद आबीद हुसैन खाँ बीनवादक तथा ध्रुपदिये उस्ताद लतीफ खाँ बीनवादक, पं० केशव बुवा आप्टे (ध्रुपदिये) पं० माधवराव चौधुले हारमोनियम वादक, देवीदास (सूरदास), बुन्दु खाँ सारंगीवादक, इन्दौर की वजीर जान बाई, ग्वालियर की श्रीजान बाई श्रीमती ताराबाई शिरोडक, बनारस की केसर बाई, नर्तकी हरिद्वारी बाई तथा तबलानवाज उस्ताद मौला बख्श, उस्ताद रहेमान खाँ एवं उस्ताद जहाँगीर खाँ आदि उल्लेखनीय है।

नाना पानसे इन्दौर दरबार के अमूल्य कलारत्न थे। उन्होंने अपनी विद्वता एवं प्रतिभा से मृदंग की कला एवं साहित्य को इतना समृद्ध किया कि उनसे मृदंग का एक पृथक घराना ही प्रारंभ हो गया जो नाना पानसे घराने के नाम से सुप्रसिद्ध हुआ है। आज भारत में जो इने गिने मृदंगवादक उपस्थित हैं उनमें पानसे घराने के कलाकारों का योगदान अमूल्य है।

ग्रंथ सूची

श्री कामेश्वर नाथ शर्मा —*काशी की संगीत परम्परा*
प्रो० स्वतंत्र गर्ग —*भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण*
डॉ० योगमाया शुक्ला —*तबले का उद्गम विकास और वादन शैलिया*
प्रो० स्वतंत्र गर्ग —*भारतीय संगीत एक वैज्ञानिक विश्लेषण*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008 भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,45-52**
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777 प्रकाशनार्थ स्वीकृत 06 अप्रैल 2017

''दुर्ग जिले में पिछड़े वर्गों की आरक्षण नीति से आम नागरिकों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन''

डॉ० प्रदीप कुमार भिमटे*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *''दुर्ग जिले में पिछड़े वर्गों की आरक्षण नीति से आम नागरिकों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन''* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *प्रदीप कुमार भिमटे* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

किसी सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक जीवन प्रणाली में यदि मनुष्य को जन्म के आधार पर सम्मानित अथवा अपमानित किया जाता है तो ऐसी व्यवस्था कदापि न्यायपूर्ण तथा समतावादी नहीं माना जा सकता। भारत में तो प्राचीन काल से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक जन्म के आधार पर कुछ वर्गो के राष्ट्रीय मुख्यधारा से पृथक रखने की एक परंपरा रही है। हमारे संविधान निर्माता उक्त असंतुलन से भली–भांति अवगत थे। सदियों से शासक जातियों के शोषण का शिकार हुई जातियों की सरकारी पदों पर नियुक्तियाँ होने लगी आरक्षण प्राप्त कर अस्पृश्य समझे जाने वाली जातियों का सत्ता व प्रशासन में भागीदारी सुनिश्चित हुई, महिलाओं को भी राजनीति में आने का मौका मिला है। यह सब आरक्षण व्यवस्था का ही कमाल है आरक्षण से राष्ट्र का आधार मजबूत हुआ है।

''प्रतिभा दो तरह की होती है एक नैसर्गिक और दूसरी स्व–प्रयास से विकसित। पहली तरह की प्रतिभा प्रकृति प्रदत्त होती है जो संवर्ण और पिछड़ा दोनों में से किसी के भी पास हो सकती है; लेकिन स्व–प्रयास से विकसित प्रतिभा अवसर मिलने पर विकसित होती है। अवसर पर किसी खास वर्ग का एकाधिकार होना भी देश और समाज की सेहत के लिए ठीक नहीं है। वैसे भी दलित, पिछड़ा और कमजोर वर्ग के लोग भारतीय वर्णव्यवस्था के तहत सदियों से शोषित रहे हैं। अत: उनको आरक्षण देकर आगे बढ़ने का अवसर प्रदान किया जाता है तो कोई अन्याय नहीं होगा बल्कि देश का आधार मजबूत हुआ है।

प्रजातंत्र में भी सभी को बराबर अवसर मिले इसके लिए जरूरी है कि सत्ता में भी सबकी भागीदारी बराबर हो। इसी बात को ध्यान में रखते हुए यह व्यवस्था की गई कि अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्ग और महिला सभी की भागीदारी सत्ता में हो।

* सहायक प्राध्यापक, राजनीतिशास्त्र विभाग, स्वामी विवेकानन्द शा० महा० (लखनादौन) सिवनी (मध्य प्रदेश) भारत

© लेखक २०१७, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ग्राम पंचायत में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति तथा पिछड़े वर्ग के सदस्यों के लिए आरक्षण की व्यवस्था इस उद्देश्य से की गई है कि उन्हें समाज की मुख्य धारा से जुड़ने तथा समाज की तरक्की में हाथ बटाने का मौका मिल सके। यदि समाज का एक बड़ा वर्ग सामाजिक शैक्षणिक और आर्थिक पिछड़ेपन के कारण समाज से विकास और उत्थान की प्रक्रिया में नहीं जुड़ता है तो समाज का उसके समग्र रूप में विकास सम्भव नहीं है। आरक्षण व्यवस्था के कारण इन वर्गो के लोगों में शिक्षा, स्वास्थ्य राजनीतिक प्रतिस्पर्धा एवं सामाजिक उत्थान संबंधी कार्य तीव्रता से हो रहे जिससे कि इन वर्गो का मनोबल भी बढ़ा है। वे समाज की समस्याओं के प्रति जागरूक हो रहे तथा उन समस्याओं से लड़ भी रहे है; परंतु जहाँ आरक्षण व्यवस्था ने समाज में समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय की स्थापना की है वही दूसरी ओर आरक्षण व्यवस्था ने सामान्य वर्ग के लिए संकट उत्पन्न कर दिया है क्योंकि गैर आरक्षित वर्ग आरक्षण की विरोध करके ही अपनी हित समझते है।

अध्ययन के उद्देश्य

१. आरक्षण नीति का अध्ययन करना।
२. आरक्षण नीति से होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करना।
३. आरक्षण नीति से आम नागरिकों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन की प्रासांगिकता

हमारे संविधान निर्माताओं ने देश की आजादी के पश्चात् सभी वर्गो को विशेषकर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति, अन्य पिछड़ा वर्ग तथा महिलाओं को समान हक एवं अधिकार प्राप्त हो इसके लिए विभिन्न संवैधानिक प्रावधान किए ताकि उनकी प्रगति एवं दशा तथा दिशा में बदलाव लाया जा सके। आरक्षण ने इन वर्गो के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाया है; तथा इससे देश का आधार मजबूत हुआ है, किन्तु जिन वर्गो को आरक्षण का लाभ प्राप्त नहीं हुआ है वर्ग आरक्षण को खतरनाक हथियार मानता है तथा सदैव आरक्षण का विरोध करते है अत: इससे समाज में वर्गवाद बढ़ा है एवं राष्ट्रीय हितों को नुकसान पहुचा है। ऐसी स्थिति में आरक्षित वर्ग गैर आरक्षित वर्ग (आम नागरिक) ने राष्ट्रीय हित को मध्य नजर रखकर आरक्षण व्यवस्था के गुण दोषों के आधार पर इसका प्रभावी क्रियान्वयन ही राष्ट्रीय एकता के लिए सहायक होगा अन्यथा आरक्षण नीति वोट बैंक का माध्यम बनकर रह जायेगी।

शोध की अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत शोध अध्ययन का पूर्ण करने के लिए प्राथमिक एवं द्वितीय स्त्रोंतो का सहारा लिया गया। प्राथमिक स्त्रोत के अन्तर्गत प्रश्नावली, साक्षात्कार, अनुसूची सर्वे, अवलोकन करके उद्देश्य पूर्ण रेण्डम सेम्पालिंग के माध्यम से ३०० उत्तरदाताओं से आरक्षण नीति एवं इससे पड़ने वाले प्रभावों के बारे में अभिमत प्राप्त किया गया एवं आरक्षण से सम्बधित साहित्य का अध्ययन किया गया जिसमें प्रकाशित पुस्तकें, पत्र–पत्रिकाएँ, इन्टरनेट की सहायता ली गई इस प्रकार तथ्यों का संकलन कर विश्लेषण किया गया।

तालिका आरक्षण नीति से अनारक्षित वर्ग में आक्रोश :

क्रमांक	अनारक्षित वर्ग में आक्रोश	संख्या	प्रतिशत
१	हॉ	१६३	५५
२	नहीं	१२४	४१
३	कह नहीं सकते	११	०३
४	प्रश्न समझ में नहीं आया	०२	०१
कुल योग		३००	१००

अनारक्षित वर्ग में आक्रोश संबंधी विवरण

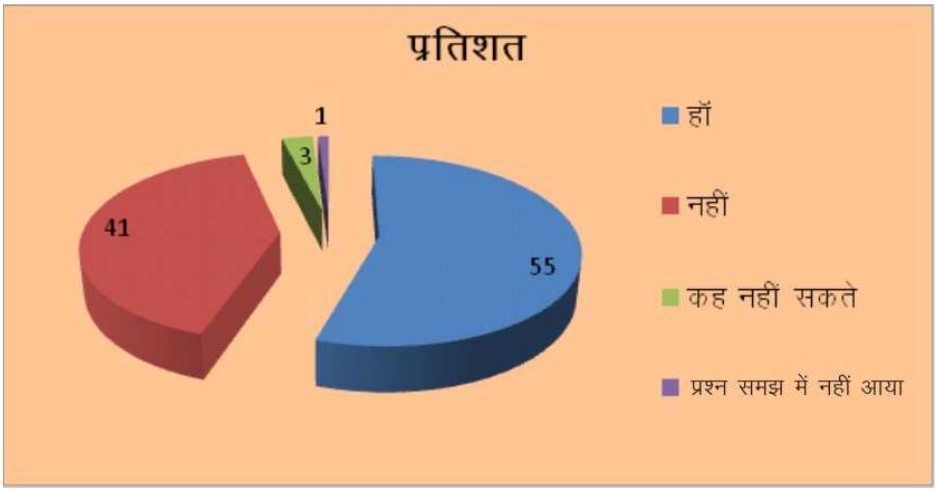

उपरोक्त तालिका के समंकों से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के उत्तरदाताओं में से ५५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि आरक्षण नीति से अनारक्षित वर्ग में आक्रोश पनपा है तथा वे पिछड़े वर्गो को दिये जाने वाले आरक्षण के विरोध में है, उच्च शिक्षण संस्थानों में आरक्षण देने संबंधी विधेयक की चिंगारी सुलग गई, ४१ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि आरक्षण नीति से समाज के अनारक्षित वर्ग के लोगों के आक्रोश का सामना नहीं करना पड़ता है क्योंकि आरक्षण नीति से किसी अन्य वर्गो के लोगों के हितों को मारकर या छीनकर आरक्षण नहीं दिया जा रहा है बल्कि यह आरक्षण समाज के वंचित वर्ग के लोगों को मुख्यधारा में लाने के लिये आरक्षण का लाभ दिया जा रहा है जिससे समाज में समानता की स्थिति बन रही है एवं पिछड़े वर्ग के लोग सामाजिक गुलामी से बाहर निकलकर समरसता के साथ जीवन जी रहे है। ३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस संबंध में कह नहीं सकते कहा है। १ प्रतिशत उत्तरदाताओं को प्रश्न समझ इसलिए समझ में नहीं आया क्योंकि वे अशिक्षित और निरक्षर थे ।

तालिका आरक्षण नीति का समाज पर प्रभाव :

क्रमांक	आरक्षण नीति का समाज पर पड़ने वाला प्रभाव	संख्या	प्रतिशत
१	हॉ	११४	३८
२	नहीं	१६५	५५
३	कह नहीं सकते	१८	०६
४	प्रश्न समझ में नहीं आया	०३	०१
कुल योग		३००	१००

आरक्षण नीति का समाज पर पड़ने वाला प्रभाव संबंधी अभिमत

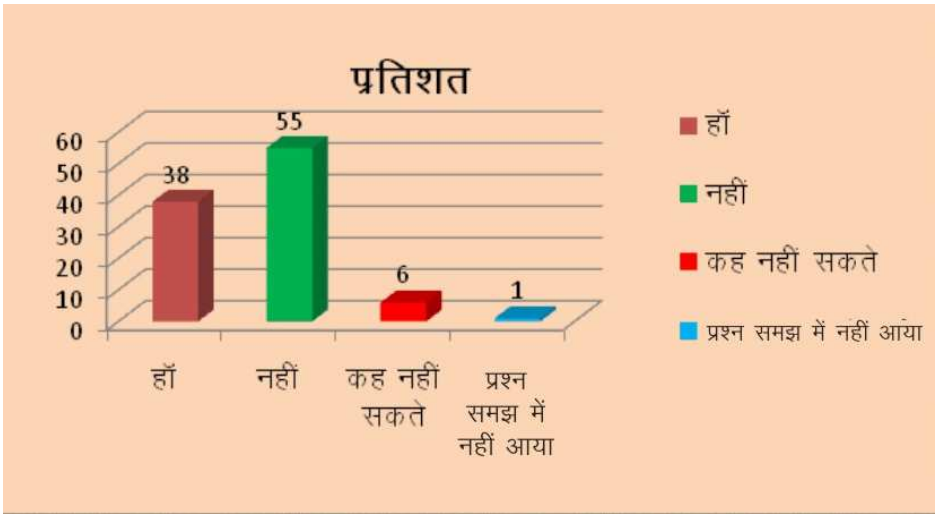

उपरोक्त तालिका के विवरण से स्पष्ट है कि दुर्ग जिले में उत्तरदाताओं में से ३८ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि आरक्षण नीति से समाज के पिछड़े वर्गो के लोग और अधिक पिछड़ते जा रहे हैं। आरक्षण नीति के कारण ही इन वर्गो में आलस्य एवं हीन भावना पैदा होती है उन्हें पता होता है कि आरक्षण का लाभ उन्हे मिल ही जायेगा इस कारण पर्याप्त रूप से मेहनत नहीं कर पाते हैं और वे पिछड़ जाते हैं। किन्तु ५५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि ऐसा नहीं कि आरक्षण के कारण समाज के पिछड़े वर्ग के लोग और पिछड़ते जा रहे है तथा उनमें हीन भावना आ रही है बल्कि आरक्षण नीति के कारण इन वर्गो के लोगों में शैक्षणिक सामाजिक राजनीतिक एवं आर्थिक विकास हुआ है।

नई चेतना उम्मीदों के साथ विकास कर रहे है। इन वर्गो में प्रतिस्पर्धा की जबरदस्त भावना उत्पन्न हुई और ये लोग प्रत्येक क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित कर रहे है। ६ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस प्रश्न पर अपना अभिमत व्यक्त नहीं कर पाये हैं। १ प्रतिशत उत्तरदाताओं को प्रश्न समझ में नहीं आया है क्योंकि उनमें शिक्षा का अपेक्षित स्तर नहीं देखा गया। आरक्षण के कारण ही समाज का कमजोर तबका सामाजिक एवं आर्थिक रूप से मजबूत हुआ है और वह समाज की मुख्य धारा में आ रहा है। इससे जातिगत भेदभाव समाप्त हो रहा है क्योंकि नौकरियों में आने के बाद परिस्थिति में परिवर्तन आ जाता है तथा लोगों के नजरिये में बदलाव आना प्रारंभ होता है।

तालिका आरक्षण से संपूर्ण वर्ग एवं समाज में वर्गवाद :

क्रमांक	समाज में आरक्षण से वर्गवाद	संख्या	प्रतिशत
१	हॉ	१९९	६६
२	नहीं	७४	२५
३	कह नहीं सकते	२७	०९
कुल योग		३००	१००

समाज में आरक्षण से वर्गवाद

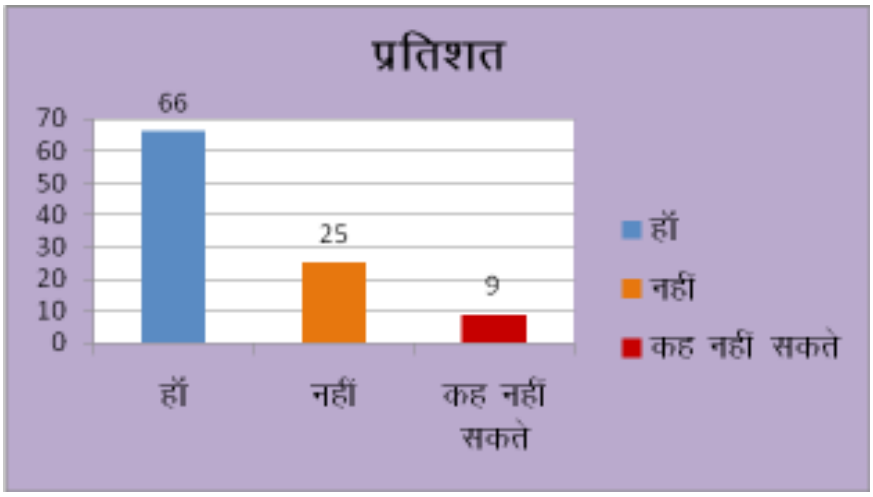

उपरोक्त तालिका के समंकों से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के उत्तरदाताओं में से ६६ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि आरक्षण नीति से सवर्ण वर्ग नाराज हो रहा है एवं समाज में आरक्षित वर्ग तथा अनारक्षित वर्ग के बीच खाई बनते जा रही है। क्योंकि आरक्षण का लाभ सवर्णो को नहीं मिलने के कारण इनमें ईर्ष्या एवं द्वेष बना रहता है २५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि आरक्षण से समाज में किसी प्रकार कोई खाई नही बन रही है तथा इसमें संवर्ण वर्गो के नाराज होने की कोई बात ही नहीं है। क्योंकि आरक्षण इन वर्ग के हितों की उपेक्षा करके नहीं दिया जा रहा है बल्कि आरक्षण समाज के ऐसे वंचित लोगों को दिया जा रहा है जो सदियों से अपने हक अधिकारों से दूर थे तथा इनके साथ सदैव शोषण का व्यवहार किया जाता था जबकि ९ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस संबंध में कुछ नहीं कहा क्योंकि वे अधिकांशत: मजदूर और श्रमिक थे जिस कारण वे देश की आरक्षण नीति से अनभिज्ञ थे।

आज भी देश में जमीनी आधार पर परिस्थितियां अलग है आज भी दलितों आदिवासियों को एक अलिखित सामाजिक अन्याय का सामना करना पड़ता है। इस पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये। पिछड़े वर्गों को पता है कि उनके साथ कैसा अन्याय हो रहा है इस अन्याय को भारतीय मीडिया भी पूरी ईमानदारी के साथ जनमानस तक नहीं पहुँचा पाता है हॉ इतना जरूर है कि मीडिया आरक्षण विरोधी लहर जरूर जनमानस तक पहुँचा देती है ताकि आरक्षण व्यवस्था को हर हाल में गलत साबित किया जा सके। यदि आरक्षण व्यवस्था में कोई कमियां नजर आये तो इस पर आम राय बननी चाहिये उन्हे पूरी तरह से दुरूस्त करना चाहिये।

वास्तिविक सामाजिक परिस्थितियों असमानताओं से मुँह मोड़ लेना समाधान नहीं है। प्रमोशन में आरक्षण से सामाजिक कटुता बढ़ेगी विभेद की राजनीति को बल मिलेगा सरकारी तन्त्र में भ्रष्टाचार और खोखलापन जो आज है वह कई गुणा ज्यादा बढ़ेगा इससे समतामूलक समाज के निर्माण में बाधा उत्पन्न होगी इससे नई मांगे उभरकर सामने आयेगी तथा दलित ईसाई एवं मुस्लिम–ईसाई भी अब आरक्षण की मांग करने लगे है। इससे निश्चित ही वर्गवाद की भाना बढ़ सकती है। इसके लिये भी संविधान संशोधन की मांग बढ़ेगी। आरक्षण की राजनीति की विडंबना देखिए कि कम्युनिस्ट भी जाति की सच्चाई को स्वीकार करने लगे है।

आज वोट की राजनीति का तकाजा देश में सामाजिक समरसता से अधिक बड़ा हो गया है। इससे विघटनकारी ताकतों को बल मिलेगा समाज की एकता छिन्न–भिन्न हो जायेगी। सामाजिक विवेक से शून्य रहने के कारण सवर्णो ने पूना पैक्ट के जमाने से आरक्षण का जो विरोध करना शुरू किया वह आज तक नहीं थमा है। इसका कारण यह है कि उन्हें लगता है आरक्षण के सहारे दैविक सर्वहारा उन पेशों में काम करने का अवसर पा जाता है जो हिन्दू ईश्वर और शास्त्रों द्वारा महज उनके लिये आरक्षित रहा है। इस सोच के कारण ही सवर्णो ने मण्डल की रिपोर्ट आने के बाद आरक्षण विरोध का चरम दृष्टान्त पेश किया किन्तु मण्डल रिपोर्ट के पश्चात् जब शूद्रातिशुद्रों का विशाल संगठित समूह आरक्षित वर्ग बन गया और सत्ता पर परम्परागत शासक जातियों की पकड़ ढीली पड़ गई तो सवर्णों ने दो तरफा नीति अपनाई एक तरफ जहां इनका बुद्धिजीवी वर्ग आरक्षण को सामाजिक व शैक्षणिक पिछड़ापन की जगह आर्थिक आधार पर लागू करवाने के लिये राष्ट्र के विचारों के निर्माण में जुट गया वही दूसरी तरफ एक तबका गरीब सवर्ण को आरक्षण दिलाने के लिये खून की नदियाँ बहाने और उग्र रूप लेने की धमकी देने लगा।

सामान्य वर्ग के लोगों को आर्थिक आधार पर आरक्षण :

क्रमांक	आर्थिक आधार पर आरक्षण	संख्या	प्रतिशत
१	हॉ	१४४	४८
२	नहीं	१४७	४९
३	कह नहीं सकते	०९	०३
कुल योग		३००	१००

आर्थिक आधार पर आरक्षण

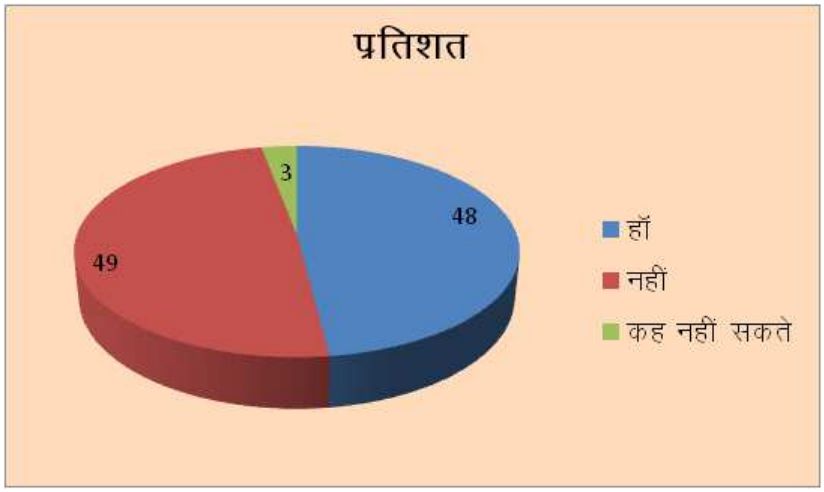

उपरोक्त तालिका के समंकों से स्पष्ट है कि दुर्ग जिले निवासरत उत्तरदाताओं में से ४८ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने उच्च वर्गों के लोगों को आर्थिक आधार पर आरक्षण दिये जाने संबंधी अभिमत कहा कि आज उच्च वर्ग में कई लोग गरीब होते है उन्हें पढ़ने के लिये संसाधन उपलब्ध नहीं होते है जिसके कारण वे गरीबी से लड़ नहीं पाते है वे अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा नहीं दे पाते है। मन्दिरों में भी आज अच्छे से दान प्राप्त न हो पाता है। परन्तु ४९ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि उच्च वर्ग के लोगों को आर्थिक आधार पर आरक्षण नहीं दिया जाना चाहिये। क्योंकि इन लोगों की सामाजिक शैक्षणिक स्थिति काफी मजबूत होती है।

गरीबी के आधार पर यदि आरक्षण दिया जाता है तो इससे गरीब बनने के लिये काफी स्तर फर्जीवाड़ा हो सकता है तथा गरीबी रेखा प्रमाण पत्र बनाने में धांधले बाजी होगी तथा अमीर या सम्पन्न सवर्ण भी नौकरी में आने के लिये या छूट प्राप्त करने के लिये वह अपने प्रभाव का इस्तेमाल करने पीछे नहीं हटेंगे। जैसा की गरीबी रेखा में आने के लिये अनेक संपन्न लोगों ने अपना नाम सूची में जुड़वा कर लाभान्वित होते रहे जिससे वास्तविक वंचित गरीब को लाभ नहीं मिल पाया। इस प्रकार आर्थिक आधार पर सवर्ण को आरक्षण का लाभ नहीं दिया जाना चाहिये। इसके अलावा ३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कह नहीं सकते कहा है क्योंकि वे मजदूर, श्रमिक तथा अशिक्षित थे।

भारत में लम्बे समय से आर्थिक आधार पर आरक्षण की मॉग की जा रही है। इसका मुख्य कारण सवर्ण जातियों में भी गरीबी का होना है। भारत में आरक्षण के पीछे सामाजिक एवं शैक्षणिक पिछड़ापन बड़ा कारण है। दरअसल हमारे यहाँ गरीब सवर्ण की बजाय आम दलित की स्थिति ज्यादा खराब है। एक सवर्ण गरीब समाज में सामाजिक व्यवहार पाता है। जबकि एक दलित गरीब को दोहरी मार झेलनी पड़ती है। गरीबी के कारण पहले से ही वह सुख–सुविधाओं से वंचित होता है और दूसरा जातीय भेदभाव साथ ही छुआछूत के कारण अपना दुखड़ा भी अन्य किसी को सुना नहीं पाता है। आरक्षण द्वारा ऐसे दलितों और पिछड़ों को मख्य धारा में लाने का प्रयास किया गया है।

भारत में बढ़ता भ्रष्टाचार भी आर्थिक आधार पर आरक्षण पर एक बड़ा प्रश्न चिन्ह लगता है। गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों में वास्तविक गरीब कितने है। भ्रष्टाचार के कारण कई समृद्धशाली परिवारों के पास बी.पी.एल. कार्ड है। इसके अतिरिक्त फर्जी प्रमाण पत्रों द्वारा नौकरी प्राप्त करने की घटनायें भी सामने आती रहती हैं। जब व्यक्ति नौकरी प्राप्त करने के लिये अपने परम्परागत जातीय अहं को छोड़कर फर्जी तरीके अपनाता है तो क्या उसके लिये गरीबी का फर्जी प्रमाण पत्र प्राप्त करना असान नहीं होगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि गरीबी का प्रमाण पत्र लेकर समृद्धशाली संवर्ण जातियां आरक्षण का लाभ उठायेगी।

सरकारी नौकरियों में दलितों और पिछड़ों के आरक्षण के बाद अगड़ी जातियों के गरीबों के बारे में भले ही सभी राजनीतिक दलों ने चुप्पी साध रखी है लेकिन उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री मायावती ने अब इस मामले पर उन्होने प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह से अगड़ी जातियों के गरीबों को आर्थिक आधार पर आरक्षण देने की पैरवी की है। इतना ही नहीं निजी क्षेत्र की नौकरियों में आरक्षण के मामले में अब तक नाकाम रही केन्द्र सरकार के सामने उन्होने यह मामला प्रमुखता से उठाया। मायावती ने कहा कि उत्तरप्रदेश ही नहीं बल्कि पूरे देश में सवर्ण जातियों के गरीब भी दयनीय जीवन जीने को मजबूर हैं। उन्होंने कहा कि अगड़ी जातियों के गरीबों का भी ध्यान रखते हुए उन्हें आर्थिक आधार पर आरक्षण दिया जाना चाहिये।

इसके लिये जरूरी हुआ तो संविधान में संशोधन भी करना चाहिये। उन्होंने आरक्षण की मांग को जरूरी बताते हुए आरक्षण के मामले को संविधान की नौवीं अनुसूची में शामिल करने का भी अनुरोध किया है। उसके लिये बैंको से सस्ता लोन मिलेगा, इंजीनियरिंग मेडिकल प्रबंधन पालीटेकनिक या फिर इस जैसे दूसरे व्यवसायिक पाठ्यक्रमों की पढ़ाई के लिये जरूरतमंदों को बैंक कर्जा देंगे। ब्याज भुगतान में छात्रों को कुछ राहत मिलेगी। इस प्रकार समाज में बेहतर वातावरण निर्मित होगा।

आरक्षण से भविष्य में राष्ट्रीय एकता को खतरा :

क्रमांक	आरक्षण से भविष्य में राष्ट्रीय एकता खतरा	संख्या	प्रतिशत
१	हॉ	१४८	४९
२	नहीं	१३५	४५
३	कह नहीं सकते	१७	०६
	कुल योग	३००	१००

आरक्षण से भविष्य में राष्ट्रीय एकता खतरा संबंधी अभिमत

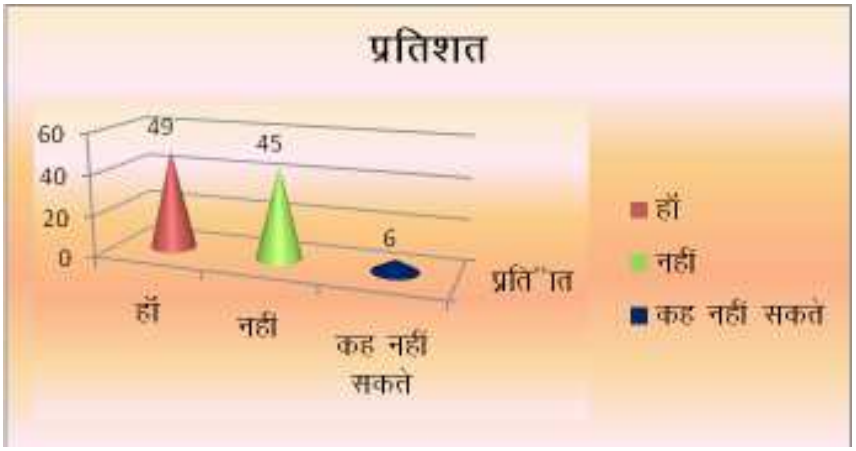

उपरोक्त तालिका के समंकों से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं में से ४९ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि अनारक्षित (सवर्ण वर्ग) के द्वारा आरक्षण का बार–बार विरोध किया जा रहा है जिससे कि आरक्षित वर्ग के प्रति इस वर्ग में आक्रोश बढ़ा है साथ ही हिंसा, उत्पात, राष्ट्रीय संपत्ति को नुकसान पहुॅचा है। भविष्य में भी इस प्रकार का खतरा धक्का पहुॅचाता है। जबकि ४५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि यह सही कि आरक्षण का सवर्णो ने हमेशा विरोध किया है उनमें आक्रोश भी है किन्तु इससे राष्ट्र की एकता को खतरा नहीं होगा क्योंकि आरक्षण का लाभ पिछड़ों वंचितों को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाने के लिये दिये जाने का एक माध्यम है ताकि कोई भी नागरिक विकास से अछूता न रह पाए। यदि पिछड़ों दलितों कमजोर वर्ग के लोगो को आरक्षण का लाभ न दिया तब सुविधाओं से वंचित लोगों से राष्ट्र को खतरा हो सकता है क्योंकि संख्यानुपात के आधार पर यदि आरक्षित वर्ग का समुचित प्रतिनिधित्व नहीं होगा तो भविष्य में खतरा बढ़ सकता है किन्तु आरक्षण व्यवस्था से राष्ट्र को खतरा नहीं हो सकता राष्ट्र प्रेम सभी लोगों में होता है आरक्षण का विरोध सवर्ण द्वारा किया जाना अनुचित है क्योंकि प्रत्येक क्षेत्र सवर्णो का प्रभुत्व रहा यदि आरक्षण के माध्यम से पिछड़ों को आगे बढ़ाने में सहायता प्राप्त होती है तो सवर्ण लोगों को विरोध के बजाय सकारात्मक सोच के साथ सहयोग करना चाहिये क्योंकि राष्ट्र की प्रगति सभी वर्गो की प्रगति में ही सम्भव है। उत्तरदाताओं ने अपना अभिमत व्यक्त करने में असमर्थता व्यक्त की।

निष्कर्ष

आरक्षण व्यवस्था ने सदियों से शोषित एवं पिछड़ी जातियों को समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है, तथा उनका प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए एवं सत्ता व प्रशासन में भागीदारी बढ़ाने के लिए आरक्षण व्यवस्था आवश्यक कदम है, आरक्षण से राष्ट्र का आधार मजबूत हुआ है। आरक्षण व्यवस्था से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्ग के विकास एवं उन्नति में यह व्यवस्था कारगर साबित हुई। किन्तु आरक्षण व्यवस्था के विरोध में अनेक बार विरोधी स्वर भी उभर कर सामने आये, तथा वे आरक्षण व्यवस्था को समाज की प्रगति बाधक मानते है। किन्तु केवल विरोध के आधार पर यदि हम आरक्षण व्यवस्था के संदर्भ में सही मानसिकता नही रख पायेगें तब ऐसी स्थिति में समाज के शोषित पीड़ित तथा वंचित वर्गो के साथ सामाजिक न्याय स्थापित नहीं हो पायेगा। एवं आरक्षण जैसी संवैधानिक व्यवस्था का सही क्रियान्वयन नहीं हो पायेगा, अत: राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुऐ आरक्षित वर्ग एवं अनारक्षित वर्ग को एक – दूसरे के विरोध के बजाय आपसी सहयोग के साथ तालमेल स्थापित करते हुए सकारात्मक सोच के साथ आगे बढ़ना चाहिए। जिससे समाज में समता मूलक समाज का निर्माण हो सके। भारतीय संविधान में आरक्षण व्यवस्था का मूलाधार सामाजिक एवं शैक्षणिक रहा है, इसलिए आर्थिक आधार पर आरक्षण की मांग की जा रही है, जो कि न्याय संगत नहीं है क्योंकि आरक्षण सवर्ण वर्गो के हितों की उपेक्षा करके नहीं दिया जा रहा है, बल्कि आरक्षण समाज के ऐसे वंचित लोगों को दिया जा रहा है जो सदियों से अपने हक अधिकारों से दूर थे तथा इनके साथ सदैव शोषण का व्यवहार किया जाता था, अत: राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान में आरक्षण की व्यवस्था कि ताकि समाज के शोषित पीड़ित वंचित लोगों को उचित न्याय प्राप्त हा सके, एवं उन वर्गो की प्रगतिसुनिश्चित हो सके।

सुझाव

१. आरक्षण नीति का प्रभावी क्रियान्वयन किया जाना चाहिए।
२. गैर आरक्षित वर्ग को आरक्षण का विरोध करने के बजाय सकारात्मक सोच के साथ सहयोग करना चाहिए, ताकि समाज के पिछड़े वर्गों का विकास हो सके।
३. राष्ट्रीय हितों का ध्यान रखा जाना चाहिए।
४. आर्थिक आधार पर आरक्षण देने के पूर्व समाज की जाति व्यवस्था को समाप्त करने के लिए आम राय बनाने की आवश्यकता है इसके बाद ही आर्थिक आधार पर आरक्षण देने की कोई नई व्यवस्था की जा सकती है।
५. सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए सभी भारतीयों को मिलजुल कर कार्य करने की प्रवृत्ति विकसित करनी चाहिए।

संदर्भ

डॉ० मनोज कुमार (सितम्बर २००९) —*भारत में आरक्षण नीति का सिद्धांत,* पृष्ठ संख्या २०, प्रतियोगिता
वही, पृष्ठ संख्या २८९
गुप्ता, राजेश कुमार (२०००) —*भारत में आरक्षण नीति,* मानक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
गुप्ता, रामप्रताप (२००४) —*आरक्षण क्रांतिया अपेक्षायें एवं उपलब्धियॉ,* अकादमी उज्जैन
अम्बेडकर मिशन पत्रिका, सितम्बर २००७ पटना प्रकाशन।
जाटव, सुरेन्द कुमार (सितम्बर २००७) —*योग्यता नही अवसरों की उपलब्धता,* अम्बेडकर मिशन पत्रिका।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008 भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,53-56**
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777 प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 जून 2017

हिन्दू विवाह : एक संस्थागत संस्कार के रूप में

एकता*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *हिन्दू विवाह : एक संस्थागत संस्कार के रूप में* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *एकता* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

हिन्दुओं में विवाह को आज भी एक संस्कार के रुप में माना जाता है। हम आज २१वीं सदी में जी रहे है, जहाँ औद्योगिकीकरण, लोकतंत्र व आधुनिकीकरण का बोलबाला है किन्तु यदि आज भी कोई इस संस्कार (विवाह) के नियमों का उल्लंघन करता है तो वह दोषी माना जाता है और सजा का पात्र होता है। प्रस्तुत लेख में हिन्दू समाज में प्रचलित विवाह को एक संस्कार के रुप में समझने का प्रयास किया गया है।

विवाह मान संबंधों का गहरा एवं जटिल बंधन है। विवाह समाज का आधार और समाज व्यवस्था का एक अत्यंत आवश्यक अंग है। विवाह के संबंध में राधाकृष्णन ने लिखा है कि, ''विवाह एक परिपाटी ही नहीं बल्कि मानव समाज का एक अन्तनिर्हित लक्षण है। वह प्रकृति के जैविकीय प्रयोजनों तथा मनुष्य के सामाजिक प्रयोजनों के बीच एक समायोजन है।''[१]

हिन्दू सामाजिक जीवन में विवाह का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हिन्दू समाज में विवाह एक ऐसा धार्मिक संस्कार है जिसके बिना मनुष्य का धार्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उत्थान सम्भव नहीं है। पश्चिमी समाज में जहाँ विवाह को एक समझौता माना जाता है वहीं भारतीय परिप्रेक्ष्य में विवाह एक धार्मिक संस्कार और अटूट बंधन माना गया है।

हिन्दू समाज में जन्म के बाद से ही यह तय हो जाता है कि विवाह एक निर्धारित सीमा के अंदर करना है। इस समाज में जाति को ही विवाह की कसौटी माना जाता है। इसलिए प्रत्येक हिन्दू को अपनी जाति के अन्दर ही विवाह करना पड़ता है। हिन्दुओं में कोई भी स्त्री–पुरुष जिससे चाहे उससे विवाह नहीं कर सकते। इस समाज में जाति–समूह छोटी–बड़ी शाखाओं में बंटे है जो विवाह हेतु सीमाओं का निर्धारण करते है। हिन्दू जीवन में विवाह सभी संस्कारों में प्रमुख संस्कार होने के साथ–साथ त्याग और भोग का अनोखा समन्वय है। स्ट्रेज के अनुसार विश्व में किसी भी समाज द्वारा विवाह को उतना महत्व प्रदान हीं किया गया जितना कि हिन्दुओं के द्वारा। विवाह हिन्दुओं के सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कारों में से एक है।[२]

हिन्दू विवाह का महत्व; विवाह एक संस्था के रुप में प्रत्येक समाज में अति प्राचीन काल से विधमान है। हिन्दू समाज में विवाह को समान्यत: एक धार्मिक संस्कार के रुप में स्वीकार किया गया है। अविवाहित व्यक्ति को अपूर्ण माना जाता है। अनेक सामाजिक एवं धार्मिक उदेश्यों की पूर्ति के लिए प्रत्येक हिन्दू का विवाह करना आवश्यक समझा गया है। हिन्दू समाज में

* शोध छात्रा, राजनीतिशास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली (भारत)

© लेखक २०१७, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

प्रत्येक अभिभावक का यह कर्तव्य माना गया है कि वह अपने पुत्र–पुत्रियों का विवाह उचित आयु पर करने की व्यवस्था करें। शास्त्रों में ऐसा उल्लेख है कि उस कन्या के माता–पिता तथा बड़े भाई नरक में जाते हैं जो रजस्वला होते समय अविवाहित रह जाती है।

हिन्दू समाज में अति प्राचीन काल से ही यह विश्वास किया जाता है कि व्यक्ति तीन ऋणों के साथ जन्म लेता है– ऋषि ऋण, देव–ऋण एवं पितृ ऋण और इन ऋणों से वह क्रम से ब्रह्मचर्य (छात्र जीवन) के द्वारा, यज्ञ करके, संतानोत्पति करके उत्तीर्ण होता है। मनु की भी मान्यता है कि बिना इन तीनों ऋणों से मुक्त हुए किसी को भी मोक्ष की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए। डॉ० के०एम० कापड़िया ने हिन्दू विवाह के तीन उदेश्य धर्म, प्रजा (संतान) तथा रति (आनंद) बताये है।[३] उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि हिन्दू विवाह में धर्म का स्थान प्रथम व प्रमुख है।

हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार

हिन्दुओं में विवाह को न केवल पवित्र एवं अटूट माना जाता है बल्कि यह जन्म–जन्मान्तरों तक चलने वाला एक अलौकिक बंधन भी है। हिन्दू विवाह को धार्मिक संस्कार मानने के कई कारण है जैसे :

१. धर्म पर आधारित विवाह
२. विवाह में स्थायित्व
३. ऋणों से मुक्ति की अवधारणा
४. धार्मिक अनुष्ठान एवं संस्कार–संस्कार के दृष्टिकोण से हिन्दू विवाह की विशेषता है कि विवाह की प्रक्रिया अनेक धार्मिक अनुष्ठानों एवं संस्कारों द्वारा पूरी की जाती है। इन अनुष्ठानों के बिना हिन्दू विवाह को अपूर्ण माना जाता है।

क.) वाग्दान; इस संस्कार में विवाह का प्रस्ताव वर पक्ष की तरफ से रखा जाता है तथा कन्या पक्ष द्वारा इसे स्वीकार किया जाता है। यह सब वैदिक मंत्रों द्वारा सम्पन्न होता है किन्तु समय बीतने के साथ इस स्थिति में परिवर्तन आता गया। विशेष रुप से मध्यकाल के पश्चात् स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा कम हो गई। इसके बाद से ही अब यह प्रस्ताव सामान्य रुप से कन्या पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया जाता है एवं वर पक्ष द्वारा स्वीकार किया जाता है।

ख.) कन्यादान; इस संस्कार में धार्मिक आधार पर पिता अपनी पुत्री का दान 'वर' को करता है। धर्मशास्त्रों में कन्यादान को बहुत बड़ा दान बताया गया है। यह प्रथा आज भी प्रचलित है तथा बड़ी महत्वपूर्ण समझी जाती है।

ग.) विवाह होम; हिन्दुओं में विवाह विधि पवित्र अग्नि को साक्षी मानकर सम्पन्न होती है। वर एवं वधू अग्नि में अनेक आहूतियाँ डालते हुए विभिन्न मन्त्रों का उच्चारण करते हैं।

घ.) पाणिग्रहण; 'पाणिग्रहण' का शाब्दिक अर्थ है एक–दूसरे के हाथ को ग्रहण करना। इसके अंतर्गत वर अपने हाथ से वधू का हाथ पकड़ कर आजीवन दाम्पत्य संबंध के निर्वाह का आश्वासन देता है तथा साथ ही यह स्वीकार करता है कि भग, अर्यमा, जैसे देवों की कृपा से ही वह उसे प्राप्त हुई है।

ड.) अग्नि परिणयन; इसमें वर–वधू दोनों अग्नि की परिक्रमा करते हुए, अग्नि को साक्षी मानकर परिणय–बन्धन को स्वीकार करते हैं।

च.) अश्मारोहण; इसमें कन्या का भाई कन्या का पैर उठाकर पत्थर की शिला पर रखवाता है। जिसका तात्पर्य है कि वधू उस पत्थर के समान ही धर्म–कार्यों में दृढ़ बनी रहेगी। यहाँ पर पत्थर को स्त्री की दृढ़ता तथा शत्रुओं का नाश करने की शक्ति का प्रतीक माना जाता है।

छ.) लाजा होम; इस संस्कार में वर–वधू पूर्व की ओर मूँह करके खड़े होते हैं, फिर वधू अपने भाई से भुने हुए चावल लेकर मन्त्रों का उच्चारण करते हुए उन्हें वेदी में डालती है और अपने पति की दीर्घ आयु आदि के लिए प्रार्थना करती है।

ज.) सप्तपदी; इस संस्कार में वर एवं वधू मन्त्रोंच्चारण करते हुए सात कदम चलते हैं। यहाँ प्रत्येक एक कदम पर एक मन्त्र का उच्चारण किया जाता है जिसमें वर वधू की विभिन्न आवश्यकताओं, अन्न, बल, धन, सुख, सन्तान, प्राकृतिक सहायता व सखाभाव की कामना करता है। सप्तपदी विवाह का महत्वपूर्ण अंग है जिसमें वर को ग्रहस्थ के आवश्यक कर्त्तव्यों का बोध कराया जाता है।

५. पतिव्रता का आदर्श–हिन्दू विवाह में विवाह सूत्र में बंधने वाली स्त्री से यह आशा की जाती है कि वह पूर्ण निष्ठा से पतिव्रता धर्म का पालन करेगी।

उपरोक्त तथ्य हिन्दू विवाह के धार्मिक संस्कार होने को प्रमाणित करते है। प्रभु ने भी इस संबंध में लिखा है कि हिन्दू के लिए विवाह एक संस्कार है तथा इस कारण विवाह संबंध में जुड़ने वाले पक्षों का संबंध संस्कार रुप में है न कि प्रसंविदा की प्रकृति का।[४]

अत: हिन्दुओं में विवाह क्योंकि एक संस्कार माना जाता है इसलिए यदि कोई स्त्री पुरुष इस जाति बंधन को तोड़, विवाह करते हैं तो उन्हें अपराधी माना जाता है और इस अपराध के लिए उनकी हत्या तक कर दी जाती है जबकि हमारा संविधान हमें १८ वर्ष की आयु के उपरांत अपना जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। इन सभी में यह देखना महत्वपूर्ण है कि जाति किस प्रकार एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

जाति व्यवस्था हिन्दू समाज की प्रमुख आधारशिला है, जो हिन्दुओं के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन को अनेक स्वरुपों में प्रभावित करती है। जो विवाह परम्परागत हिन्दू वैवाहिक पद्धति द्वारा सम्पन्न होते हैं उन्हें ही वैध माना जाता है। १९९१ में भारत द्वारा वैश्वीकरण को अपनाये जाने के बाद से भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तीव्र हो चली है। आधुनिकता का अर्थ है कि इसके समक्ष सीमित – संकीर्ण दृष्टिकोण कमजोर पड़ जाते है। आधुनिकीकरण के कारण भारत में परिवार रचना एवं विवाह से संबंधित नए विचार आए है। संयुक्त परिवार की प्रथा अब टुटती जा रही है जिसके कारण पुरानी परम्पराएं कमजोर हुई है। शिक्षा के मूल्य महत्वपूर्ण हुए है, महिला की शिक्षा में व्यापक विस्तार हुआ है इससे वह अपने निर्णय स्वयं से करने लगी है। अधुनिक शिक्षा प्राप्त भारतीय व्यक्तिवाद और योग्यता को महत्व देने के उदार विचारों से आकर्षित हुए है और उन्होनें अधिक अतिवादी जातीय व्यवहारों को छोड़ना प्रारम्भ कर दिया है। किन्तु एक सत्य यह भी है कि २१वीं सदी में रहने के बावजूद भी कुछ शक्तिशाली संस्थाएं जातिगत रुढ़िवादिता को बनाए रखना चाहती है। जाति केवल हमारे अतीत का ही नहीं बल्कि हमारे आज का भी एक अभिन्न अंग है जो सीधे तौर पर विवाह संस्था को प्रभावित करता है। विवाह की पद्धतियों में परिवर्तन अवश्य आया है किन्तु आज भी विवाह संबंधी कर्मकाण्ड विवाह की वैधता को निर्धारित करते है। जो इन नियमों का पालन न करते हुए दूसरी जाति में विवाह करते है उन्हें उसकी सजा भी भुगतनी पड़ती है। भारत में न जाने कितने जोड़ों की दिन–दहाड़े हत्या कर दी जाती है और कई बार वे स्वयं भय के कारण आत्महत्या कर लेते है। हाल ही में बिहार में भागलपुर जिले के गौराचौकी गांव में बिहार पंचायत के फरमान के बाद दो दर्जन से अधिक लोगों ने प्रेम विवाह करने वाले हिमांशु यादव की पहले जमकर पिटाई की और फिर उसे गोलियों से भून डाला।[५] इतनी बर्बर हत्या करने का अधिकार आखिर उन्हें किसने दिया? हिमांशु ने आखिर ऐसा भी क्या अपराध किया? कि उसे मौत के घाट उतार दिया गया। बर्टेल रसैल ने कहा है कि निस्सन्देह विवाह अन्य सेक्स संबंधों से अलग होता है क्योंकि यह एक विधिक संस्था है। अधिकतर समुदायों में यह धार्मिक संस्था भी है परन्तु इसका विधिक पहलू आवश्यक है।[६] उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट होता है कि विवाह में विधिक पहलू महत्वपूर्ण है किन्तु अफसोस हिन्दुओं में विवाह के विधिक पहलू पर ध्यान न देते हुए इसके केवल सांस्कारिक पहलू पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है।

हमारे देश में अर्न्तजातीय विवाह के आंकड़े अत्यंत निराशाजनक है। National Family Health Survey (NFHS-III.2005-2006) की रिपोर्ट यह दर्शाती है कि दिल्ली की ८७.०८ प्रतिशत महिलाएं अपनी ही जाति में विवाह करती है।[७] इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में वर्तमान में भी जाति व्यवस्था विवाह की संस्था पर नियंत्रण रखने का कार्य करती है।

निष्कर्ष

हिन्दू समाज में सजातीय विवाहों को श्रेयस्कर समझा जाता है लेकिन इसके हमें कई दुष्परिणाम भी देखने को मिलते है। सजातीय विवाहों के होने के कारण वर–वधू के चुनाव का दायरा बहुत ही सीमित हो जाता है। इस प्रकार विवाह योग्य व्यक्तियों की संख्या को भी बढ़ावा मिलता है। दहेज की कु–प्रथा इसी कारण पैदा हुई है। हिन्दू समाज में कन्या का विवाह करना आवश्यक माना गया है। सामान्यत: हिन्दू समाज में कन्या अविवाहित नहीं रहती है। क्योंकि हिन्दू समाज में वर अपनी जाति के अंदर ही ढूंढा जाता है इसलिए अपनी जाति तक सीमित लड़कों के साथ ही विवाह किया जा सकता है। इसी सीमित चुनाव के कारण लड़के के माता–पिता, कन्या के माता–पिता से मोल भाव करते हैं। इस मोल भाव के कारण कन्या

के माता–पिता को या तो कर्ज लेना पड़ता है या फिर किसी वृद्ध व्यक्ति से अपनी कन्या का विवाह करने को मजबूर होना पड़ता है, जो दहेज न मांगता हो।

दहेज की इस प्रथा ने बाल विवाह की समस्या को भी बढ़ावा दिया है। कन्या के माता–पिता जल्दी से जल्दी अपनी कन्या का विवाह करने की कोशिश करते है कि कहीं विवाह में देरी हुई तो हो सकता है कि वर पक्ष को कोई दूसरा अधिक दहेज देने वाला मिल जाये या अन्य कोई सुयोग्य कन्या न मिल जाये। ये सभी समस्याएं मिलकर एक अन्य समस्या कन्याभ्रूण हत्या को पैदा करती है। विवाह के समय आने वाली परेशानियों के कारण ही आज हमारे समाज में कन्या भ्रूण हत्याओं की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है।

संदर्भ सूची

[1]एस० राधाकृष्णान (१९४७) – *'रिलिजन एंड सोसाटी',* लंदन: जॉर्ज एलन एंड यूविन लिमिटेड, पृष्ठ संख्या १४७

[2]प्रीति मिश्रा (२००१) – *'हिन्दू महिलाओं के जीवन में धर्म का महत्व',* बीना (म. प्र.): आदित्य पब्लिशर्स, पृष्ठ संख्या १५५

[3]के०एम० कापड़िया (२००८) – *'भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार',* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ठ संख्या १७६

[4]पी०एच० प्रभु (१९६३) – *'हिन्दू सोशल ऑर्गनाजेशन',* (४ एडिशन) बॉम्बे: पॉपुलर प्रकाशन, पृष्ठ संख्या १७३

[5]*दैनिक जागरण,* नई दिल्ली, ७ जून २०१७, पृष्ठ संख्या १३

[6]बर्ट्रेंड रसैल (२००९) – *'मैरिज एंड मोरल्स',* लंदन: रुटलेज, पृष्ठ संख्या ८०

[7]*National Family Health Survey (NFHS-3) 2005-06,* India, Volume-1, September 2007

[8]डॉ० पाण्डुरंग वामन काणे (१९८०)– *'धर्मशास्त्र का इतिहास',* भाग–१, खण्ड–२, उत्तर प्रदेश: हिन्दी संस्थान, लखनऊ

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,60-63**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 28 अप्रैल 2009

मालेगाँव के कपड़ा उद्योग में या०ना० जाधव का कार्य

प्रा० खैरनार कैलास कारभारी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मालेगाँव के कपड़ा उद्योग में या०ना० जाधव का कार्य* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *प्रा० खैरनार कैलास कारभारी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

आजादी पूर्व काल से मालेगांव में पुराना और पारंपारिक हॅण्डलुम और पॉवरलुम कपड़ा उद्योग स्थापित हुआ है। इस उद्योग की रोज की आवागमन ६–८ करोड़ रुपये की है। भारत को आजादी मिलने के बाद मिल उद्योग के कपड़े को बढ़ावा देने के पॉवरलुम और हॅण्डलुम के उद्योग में परवाना शुल्क, उत्पादन शुल्क बढ़ाने के लिए सरकारने कई बार लोकसभा में विधेयक पर चर्चा करके निर्णय लिए थे। उस समय मालेगांव का यह उद्योग जिवित रखने और बढ़ाने के लिए कौन से नीतिगत उपायों की आवश्यकता है। निर्गमित किये जानेवाले इस शुल्क में छुट की सीमा बढाने के लिए या.ना. जाधव ने लोकसभा में सरकार के साथ खुली चर्चा करके उपाय सुझाये थे। कई बार मोर्चा, शिष्टमंडल, निवेदन इन मार्ग से प्रयास करके सरकार को मुश्लीलो से निर्णय लेने को राजी किया था। रंगीन साड़ी की समस्या उत्पन्न हुई थी। उस समय पॉवरलुम बचाव कृती समिती की स्थापना करके पॉवरलुम उद्योग को रंगीन साड़ी उत्पादन शुरु रखने के लिए प्रयास किये थे। यही कारणों से आज तक रंगीन साड़ी का उत्पादन किया जाता है। उनके इस क्षेत्र के कार्य को देखकर उनके विचार और वृत्ती मददगार की थी।

मनुष्य को अपने जीवन में अन्न, वस्त्र, मकान की मूलभूत आवश्यकता है। उनमें से कपड़ा यह एक बहुत महत्वपूर्ण चीज है। भोजन की पूर्ति के बाद अपने शरीर को ढ़ापने के लिए कपड़ा का उपयोग बहुत जरुरी है। ऋग्वेद में अनेक प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। आज का ताना–बाना ऋग्वेद में तन्तु और ओतू है। कालांतर में वस्त्र उद्योग ने वस्त्रों ने केवल विकास किया, तो अपने विकास के बल पर भारत को समृद्ध भी किया है। भारतीय औद्योगिक अर्थव्यवस्था में वस्त्र उद्योग प्रमुख है। यह उद्योग देश के बहुत लोगों को रोजगार प्रदान करता है। भारत में आधुनिक स्तर की 'प्रथम सुती कपड़ा मिल १८१८' में कोलकाता के निकट स्थापित हुई थी। उसके बाद ''मुंबई में स्पिनिंग एंड विविंग कंपनी'' ने १८५४ में स्थापित की थी।

महाराष्ट्र राज्य में वस्त्र उत्पादन के केंद्रो में से मालेगांव शहर प्रमुख उत्पादन केंद्र है। उन्हीं कारण से इस शहर को 'मिनी मॅचेस्टर' ही कहा जाता है। आजादी के पूर्वकाल से नाशिक जिले में मालेगांव शहर में हॅण्डलुम (हतकरघा) और पॉवरलूम (यंत्रमाग)

* कला, महाविद्यालय सौंदणे (ता0 मालेगाँव) नासिक (महाराष्ट्र) भारत। (पुनः प्रकाशन)

© लेखक २०१७, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

का उद्योग स्थानीयकरण हुये है। १८५७ में अंग्रेजों के विरोध में हुए उठाव के समय उत्तर भारत में रहने वाले बुनकर (विणकर) समाज के बहुत बुरे हाल हुए थे। उसके बाद १८६४ में वही प्रदेश में बड़ा अकाल फैला था। ये दोनों संकटों के कारण जीवनमान और अर्थाजन पर बड़ा संकट आया था। उसी कारण से वहाँ रहने वाले बुनकर लोगों ने अपनी रोजी रोटी की समस्या पर उपाय निकालने के लिए इन लोगों ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया था। मुंबई–आग्रा महामार्ग के धुलिया, मालेगांव, भिवंडी, मुंबई इ. शहरों में बैठ गये।

मालेगांव शहर में स्थायिक हुए बुनकर लोगों के पास रंगीन साड़ी तैयार करने का परंपरागत कौशल्य था। इसलिए इन लोगों ने मालेगांव शहर में हॅण्डलुम उद्योग की स्थापना की थी। आगे चलकर इस उद्योग में वृद्धी और विकास होता गया। मालेगांव शहर में १९२५ से शटल वाले हॅण्डलुम चलाये जाते थे। उसके बाद १९३५ में मालेगांव शहर में रहने वाले और रंगीन साड़ी के उत्पादक अब्दुल रजाक फकिर मोहमंद इस व्यक्ती पॉवरलुम की स्थापना की थी। इस तरह यह मालेगांव में यह उद्योग निरंतर बढ़ोत्तरी होती गई।

भारत को आज़ादी मिलने के बाद हैण्डलूम पर तैयार किये जाने वाले कपड़ो पर सरकार की तरफ से उत्पादन शुल्क लगाने का निर्णय १० नवंबर १९५६ के दिन लिया गया था। सरकार तरफ लिए गए इस निर्णय के विरोध में मालेगांव के हैण्डलूम व्यवसायिकों ने १३ नवंबर १९५६ के दिन बालकिसन शेठ जाजू की अध्यक्षता में सभा का आयोजन किया था। इस सभा में या०ना० जाधव, हारुन अन्सारी, शिवाजी पाटील इन्होंने कहा था की, "सरकार के इस निर्णय के कारण हैण्डलूम पर तैयार होने वाली रंगीन साड़ी की कीमत बढ़ेगी, और इन परिणाम से मालेगांव शहर में उत्पन्न की जाने वाली रंगीन साड़ी उद्योग और बाजार बंद हो जायेगा। ऐसा होने से इस उद्योग से जुड़े हुए बहुत लोग बेकार हो जायेंगे; इसलिए सरकार ने हैण्डलूम उद्योग के बारे में लिया गया निर्णय रद्द करना चाहिए।'' 'ऐसा स्पष्ट करके हैण्डलूम उद्योग पर होने वाले परिणामों की जानकारी कर दी थी। उस समय सरकार के इस निर्णय से बचने के लिए कपड़ा उत्पादक कारखाना मालकों ने छोट – छोटे कारखाने करने की नीति अपनाई थी। तब १८५७ में सरकार ने कपड़ा उत्पादक हैण्डलूम कारखानदारों की इस नीति को नियंत्रित करने के लिए कारखाने की जगह कारखानदारों पर ही कर लागू करने का निर्णय लिया था। सरकार ने उस निर्णय के बारे में लोकसभागृह में २१ अगस्त १९५७ के लिए विचार – विमर्श किया था। तब या०ना० जाधव ने कहा, ''कपड़ा मिल और कपड़ा उत्पादक हैण्डलूम पर कर लागू करते समय कार्यशील हैण्डलूम, नादुरुस्त, काम की शिफट व सरासरी कपड़ा उत्पादन इनको ध्यान में लेकर ही कपड़ा उत्पादन शुल्क का प्रमाण लागू करना चाहिए।" इस तरह की विनती उन्होंने सरकार को की थी। उसके बाद ७ दिसंबर १९५७ के दिन लोकसभागृह में जब धोती का कपड़ा पर बढ़ाये जाने वाले अबकारी कर के बारे में चर्चा शुरु थी। उस समय या०ना० जाधव ने स्पष्ट कहा था की, ''कपड़ा उत्पादन करनेवाले अलग – अलग क्षेत्रों के कारखानों का कपड़ा उत्पादन करने का हिस्सा निश्चित कर देना चाहिए, और किसी भी क्षेत्र या कारखाना मालिक ने उससे जादा कपड़ा का उत्पादन किया तो उस कारखानदार को दंडीत करना चाहिए। हैण्डलूम और पॉवरलूम क्षेत्र को धोती और साड़ी के कपड़ा उत्पादन करने का काम देना चाहिए। इस तरह से कपड़ा उत्पादन का व्यवसाय अधिक से अधिक विकेंद्रित अवस्था में पहुँचाना चाहिए; क्योंकि ऐसा करने से जादा लोगों को रोजगार मिल सकता है।" ऐसा स्पष्ट करके पुराना एवं पारंपारिक हैण्डलूम वस्त्र उद्योग को बढ़ावा देकर जीवित रखने की आशा की थी। उसके बाद या०ना० जाधव तत्कालिन उद्योग मंत्री को २६ नवंबर १९५८ के दिन मालेगांव में पॉवरलूम का विकास होने के लिए 'इंडस्ट्रियल स्टेट' की आवश्यकता है। इस बारे में चर्चा की थी।

५ नवंबर १९६० के दिन टेक्सटाइल कमिशन ने विना परवाना चलाये जाने वाले पॉवरलूम की बंद करने के लिए प्रस्ताव (वटहुकुम) जारी किया था। इस प्रस्ताव पर विचार – विमर्श करने के लिए २१ दिसम्बर १९६० के दिन लोकसभागृह में विधेयक लाया गया। उस समय या०ना० जाधव ने का था, ''महाराष्ट्र और गुजरात राज्य में रजिस्टर और विना रजिस्टर किये हुए पॉवरलूम की संख्या और सूती – असूती कपड़ा उत्पादन करने वाले पॉवरलूम और हैण्डलूम प्रमुख स्थानों की परिस्थिती का विचार करने के बाद उसने वसुल जानेवाली परवाना शुल्क का प्रमाण निश्चित किया जाना चाहिए।'' तब या०ना० जाधव ने किये हुए इस सुझाव को ध्यान में लेकर सरकार ने २६ दिसंबर १९६० के दिन पॉवरलूम रजिस्ट्रेशन (परवाना) शुल्क ५०० रुपये से १०० रुपये कर दी थी। १९६२ के केंद्रीय बजेट सादर करते समय तत्कालिन वित्तमंत्री मोरारजी देसाई ने कहा था की, ''जिस कपड़ा कारखाने में ५० से अधिक पॉवरलूम मौजूद है। उन कारखानों कपड़ा मिल गिरणी के बराबर उत्पादन शुल्क वसुल

किया जायेगा; और उनको वही शुल्क देना पडेगा'', ऐसा स्पष्ट किया था। सरकार का यह विधेयक पॉवरलूम क्षेत्र के लिए बहुत भारी पड़नेवाला था, इसलिए इसके विरोध में ८ अगस्त १९६२ के दिन मालेगांव शहर में या०ना० जाधव, निहाल अहमद उन्होंने नेतृत्व करके मालेगांव शहर के पॉवरलूम मालको की बैठक लेकर निषेध मोर्चा निकाला था। और मालेगाव के तहसिलदार को निवेदन दिया था। उसके बाद या०ना० जाधव ने २३ अगस्त १९६२ के दिन दिल्ली जाकर वहाँ पॉवरलूम उद्योग में काम करनेवाले बुनकर (कामगार) लोगों की समस्याओं जानकारी सरकार के प्रतिनिधी ओर केंद्रीय मंत्रीमण्डल में शामिल कुछ सदस्यों को कर दी थी। पॉवरलूम पर उत्पादित कपड़ा पर लगाये जानेवाले शुल्क कम करने का सुझाव दिया था। इसके कारण और कुछ कपड़ा उत्पादन केंद्रो से की गई शिकायतें ध्यान में लेकर सरकार ने पॉवरलूम केंद्रो की परिस्थिती की जानकारी लेने के लिए भारत सरकार ने ८ जानेवारी १९६३ के दिन अशोक मेहता की अध्यक्षता में समिति की नियुक्ती की थी। समिति २३ मई १९६३ के दिन मालेगांव शहर में आयी थी। उस समय समिती को पॉवरलूम कपड़ा उत्पादन क्षेत्र की समस्या का निवेदन दिया था। मालेगांव शहर में २६ अक्तुबर १९६३ के दिन पॉवरलूम और बुनकर सहकार संघटना के डेप्युटी रजिस्ट्रार की अध्यक्षता में बैठक थी। इस बैठक में या०ना० जाधव ने पॉवरलूम कपड़ा उद्योग का भारतीय अर्थव्यवस्था में कपड़ा उद्योग का स्थान और आवश्यकता स्पष्ट की थी।

सन् १९६४–६५ का केंद्रीय बजट प्रस्तुत किया जानेवाला था। उस समय 'अखिल भारतीय हैण्डलूम और पॉवरलूम संघटना मुंबई' की तरफ से महाराष्ट्र रा्य के प्रतिनिधि या०ना० जाधव की नियुक्ती की गई थी। इस नियुक्ती के बाद उसने ३ फरवरी १९६४ से २ अप्रैल १९६४ तक दिल्ली में निवास करके वित्तमंत्री, उद्योग मंत्री और लोकसभा के सदस्य हैण्डलूम और पॉवरलूम कपड़ा उद्योग में कोई निर्णय लेने के लिए विचार विमर्श करते थे। उस समय या०ना० जाधव ने २२ प्रश्न और कुछ उप–प्रश्न से हैण्डलूम और पॉवरलूम कपड़ा उद्योग क्षेत्र पर प्रकाश डाला था। उनके इस विचारों को ध्यान में लेकर सरकार ने कपड़ा उद्योग के बारे में ४९/६४, ५०/६४, ८०/६१, ८१/६१ नंबर जारी की हुई नोटिफिकेशन १ मार्च १९६४ के दिन रद्द खारिज कर दी थी और पॉवरलूम की जगा बदलना, १– ४ पॉवरलूम कार्यान्वित कारखानों को लगाये गये सभी तरह के शुल्क रद्द कर दिये थे।

मालेगांव शहर में कार्यान्वित पॉवरलूम कपड़ा उद्योग क्षेत्र से उत्पादन होने वाली संगीन साड़ी को अच्छी तरह से उठाव था, लेकिन महाराष्ट्र राज्य सरकार ने २८ जनवरी १९६९ दिन भिवंडी में बैठक लेकर जिस कारखाने में ४ से अधिक पॉवरलूम कार्यान्वित है। उस कारखाने को रंगीन साड़ी का उत्पादन करने को बंदी कर दी थी। तब इस बंदी से मालेगाव के पॉवरलूम कपड़ा उद्योग को बहुत बडा नुकसान होने वाला था। इस समस्या पर उपाय सुझाने के लिए 'मालेगांव यंत्रमाग बचाव कृती समिति' की स्थापना की गयी थी।

१. अब्बास अली काझी –अध्यक्ष, २. हारुन अन्सारी –उपाध्यक्ष, ३. व्यकंटराव हिरे –चेअरमन, ४. या.ना. जाधव –सेक्रेटरी, ५. निहाल अहमद –सदस्य, ६. खलील अन्सारी –सदस्य, ७. यूसुफ अन्सारी –सदस्य।

मालेगांव में स्थापित हुई इस समिती ने पॉवरलुम कपड़ा उद्योग को रंगीन साड़ी का उत्पादन करने के दिए हुए परवाने शुरु रखने के बारे में विचार विशर्म करने के लिए १२ फरवरी १९६९ के दिन बैठक ली थी। उसके बाद मालेगांव लोकसभा के प्रतिनिधि झेड एम कहाडोळे और महाराष्ट्र चेंबर ऑफ कॉमर्स के अ०रा० भट को मिलकर पॉवरलूम पर रंगीन साड़ी के उत्पादन पर लगाई गयी बंदी उठाने के लिए प्रयास करने की मांग की थी। महाराष्ट्र राज्य में पॉवरलूम पर रंगीन साड़ी उत्पादन करनेवाले केंद्र भिवंडी, धुलिया, नागपुर आदि स्थान के बुनकरों की सहायता लेकर यंत्रमाग बचाव कृती समिति ने उच्च न्यायालय में केस दाखिल करके अपने प्रयास जारी रखे थे। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री वसंतराव नाईक, और मोहन धारिया इनको मिलकर पॉवरलूम कपड़ा उद्योग से जुड़े हुए बुनकरों और उनके मालिक की परिस्थिती का कथन किया था। इस समिती ने किये हुए प्रयासों को अखिर में यश मिला था। उच्च न्यायालय ने पॉवरलूम पर रंगीन साड़ी के उत्पादन को सरकार ने की हुई बंदी पर स्टे ऑर्डर की थी। तब महाराष्ट्र राज्य सरकार ने ३० अप्रैल १९७१ के दिन नया अध्यादेश पारित करके मालेगांव के पॉवरलूम उद्योग को। मई १९७२ से रंगीन साड़ी उत्पादन करने की परवानगी दी थी।

संदर्भ ग्रंथ

अन्सारी अब्दुल मज़िद (२०००)— *पॉवरलुम संस्था मिसाल और हाल,* डॉ० अन्सारी अब्दुल मजिद, मालेगांव आवृत्ती — प्रथम

'आवामी आवाज' साप्ताहिक मालेगांव आवृत्ती, दि. ६ मार्च १९६४, २६ में १९६३, १९ डिसेंबर १९६३, ३१ जानेवारी १९६९ ३ डिसेंबर १९६९, १७ जानेवारी १९७१

'गावकरी' नाशिक जिल्हा, आवृत्ती— ९ नवम्बर २००३

'जागृती' साप्ताहिक मालेगांव आवृत्ती, दि. ६ अप्रैल १९७२

जाधव या०ना०— *पार्लमेंट मधील,* ५ वर्षाचा कालखंड, सर्कल प्रेस नाशिक, २५ सितम्बर १९६९

'सकाळ' नाशिक जिल्हा, आवृत्ती विशेषांक :२०००

धड़पड़ साप्ताहिक मालेगाव आवृत्ती २७ ऑगस्ट १९६५

सिद्दीकी इलियास— नारोशंकर राजेबहाददर आणि मालेगावचा इतिहास, चेअरमन सिटीजन वेल्फेअर सोसायटी, कुशामतपुरा, मालेगाव, आवृत्ती : प्रथम, जुलै २००८

भामरे के०जी०, जाधव एम.डी. (संपा)— व्यक्तीविशेष पुस्तिका, विश्वभारती मुद्रणालय, मालेगाव, ऑगष्ट १९७६

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,67-71**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 10 अप्रैल 2017

महाकवि माघ का पाण्डित्य

विशाल पाण्डेय*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *महाकवि माघ का पाण्डित्य* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *विशाल पाण्डेय* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य के अन्त में अपने वंश का परिचय दिया है। माघ के पितामह सुप्रभदेव श्रीवर्मल नामक किसी राजा के महामन्त्री थे। सुप्रभदेव का राजसभा में बहुत सम्मान था और राजा पर भी उनका प्रभाव था। राजा उनके परिमित सत्य एवं हितकारी वचनों को उसी प्रकार सुनता था और तद्नुकूल ही कार्य करता था, जैसे लोग भगवान् बुद्ध के उपदेश सुनते थे। इन्हीं सुप्रभदेव के 'दत्तक' नामक पुत्र हुआ जो गुणवान्, उदार, क्षमाशील, मृदुभाषी, कोमल स्वभाव एवं धर्मपरायण था। उनके गुणों से सन्तुष्ट हुये लोगों ने उनकी दीन–दुखियों को आश्रय देने की प्रकृति के कारण, उनको 'सर्वाश्रय' की उपाधि से भूषित किया था। इन्हीं दत्तक के पुत्र माघ महाकवि थे। जिन्होंने 'शिशुपालवध' नामक महाकाव्य का प्रणयन किया।

महाकवि माघ की केवल एक ही कृति शिशुपालवध उपलब्ध है। शिशुपालवध की कथा श्रीमद्भागवतपुराण, विष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, अग्निपुराण आदि में वर्णित है, किन्तु महाभारत में इसका सविस्तार वर्णन है। उसके 'सभापर्व' में यह कथा तैंतीस से पैंतालिस अध्यायों तक वर्णित है। 'शिशुपालवध' के कथानक का स्रोत महाभारत ही है। महाकवि माघ ने छोटी–सी कथा में परिवर्तन एवं परिवर्धन करके एक अभिराम रूप प्रदान किया है।

महाभारत की कथा के अनुसार एक बार महर्षि नारद विचरण करते हुए पाण्डवों की सभा में पहुँचे। उन्होंने उनका उचित सत्कार किया, संतुष्ट होने के अनन्तर उन्होंने युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ करने के लिये कहा। नारद जी के चले जाने पर युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से विचार करके भगवान् श्रीकृष्ण को बुलाने के लिए दूत भेजा। दूत ने श्रीकृष्ण को महाराज युधिष्ठिर का सन्देश दिया। भीमसेन के द्वारा जरासन्ध का वध कर देने के पश्चात् राजसूय यज्ञ का आयोजन किया गया। यज्ञ में ब्राह्मणों के चरण धोने का कार्य भगवान् ने स्वयं स्वीकार किया। यज्ञ में प्रथम अर्घ्य सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को दिया जाना था। भीष्म–पितामह के परामर्शानुसार उसके लिये भगवान् श्रीकृष्ण सर्वोपयुक्त व्यक्ति निर्धारित किये गये, इससे शिशुपाल अत्यधिक क्रुद्ध हुआ और उनके प्रति अपशब्दों का प्रयोग करने लगा। भगवान् श्रीकृष्ण उसके अपराधों को गिनते रहे और जैसे ही उसके सौ अपराध पूरे हुए, उन्होंने अपने सुदर्शनचक्र से समस्त राज–समाज के देखते–देखते उसका सिर काट दिया।

* शोध छात्र, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक २०१७, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

महाभारत की इस मूल कथा में अनेक परिवर्तन करके अपनी नवीन कल्पनाशक्ति से महाकवि माघ ने २० सर्गों में इसका विस्तार कर दिया है। यथा :

१. महाभारत में नारद जी पाण्डवों की सभा में पहुँचते हैं, परन्तु 'शिशुपालवध' में वे इन्द्र का सन्देश लेकर भगवान् श्रीकृष्ण के पास आते हैं और उन्हें शिशुपाल के वध के लिये प्रेरित करते हैं।
२. दूसरे सर्ग में कवि ने भगवान् कृष्ण, बलराम और उद्धव के बीच में जाकर राजनीतिक विचार–विमर्श कराया है, वह सर्वथा नवीन योजना है।
३. तीसरे सर्ग से लेकर बारहवें सर्ग तक जो नगर, ऋतु, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, मधुपान, सुरत, प्रभात, सेनाप्रयाण आदि का वर्णन है। यह सब कवि की स्वयं की कल्पना है।
४. तेरहवें सर्ग में भगवान् श्रीकृष्ण के इन्द्रप्रस्थ–गमन के समय पाण्डवों के द्वारा उनके स्वागत के वर्णन के प्रसंग में नर–नारियों द्वारा उन्हें देखने की उत्सुकता का अत्यन्त सुन्दर वर्णन नवीन उद्भावना है।
५. चौदहवें सर्ग में राजसूय यज्ञ के वर्णन में दार्शनिकता का विशिष्ट परिचय भी एकदम मौलिक है।
६. पन्द्रहवें से बीसवें सर्ग की कथा में महाभारत से पर्याप्त अन्तर है। महाभारत–कथा में शिशुपाल भगवान् श्रीकृष्ण को अपमानित करता है और वे उसका वध कर डालते हैं। पर 'शिशुपालवध' के कथानक में इन सर्गों में एक नवीन उद्भावना है।

पन्द्रहवें सर्ग में सर्वप्रथम श्रीकृष्ण की पूजा को देखकर और अपने को इससे अपमानित समझकर शिशुपाल राजसभा से उठकर चला जाता है और युधिष्ठिर, भीष्म तथा श्रीकृष्ण की निन्दा करता है। सोलहवें सर्ग में पाण्डवों और शिशुपाल के शान्तिमय वचनों को वह अस्वीकार कर श्रीकृष्ण के पास अपना दर्पपूर्ण सन्देश भेजता है। सत्रहवें सर्ग में शिशुपाल के दूत के सन्देश को सुनकर अति क्षुब्ध होकर यदुवंशी युद्ध के लिये प्रस्तुत होते हैं। वे उनके आह्वान के उत्तर में युद्ध के लिये तैयार हो जाते हैं। अट्ठारहवें सर्ग में दोनों पक्षों की सेनाओं के एकत्र होने पर दोनों ओर से तुमुल संग्राम आरम्भ हो जाता है। उन्नसीवें सर्ग में श्रीकृष्ण और शिशुपाल के बीच युद्ध होता है और बीसवें सर्ग में श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल का वध कर दिया जाता है। यह सब इन सर्गों का कथानक माघ का अपना है– महाभारत की कथा से इसका पार्थक्य है।

काव्य के सम्बन्ध में माघ की धारणा

शिशुपालवध महाकाव्य के दूसरे सर्ग में उद्धव जी श्रीकृष्ण को महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ में जाने की मंत्रणा देते हैं। उनके द्वारा राजनीति विषयक वर्णनक्रम में चार श्लोकों (७४, ८३, ८६, ८७) में माघ का काव्यसम्बन्धी मत स्पष्ट हो जाता है। जिस प्रकार सत्कवि[१] शब्द और अर्थ दोनों की अपेक्षा करता है उसी प्रकार विद्वान भी भाग्य और पुरुषार्थ दोनों की अपेक्षा करता है। इससे स्पष्ट है कि माघ कविता के लिए शब्द और अर्थ दोनों की महत्ता स्वीकार करते है। ८७वें श्लोक[२] द्वारा वे काव्य में रस की अवस्थिति आवश्यक मानते हैं। ८३वें श्लोक[३] में वे कहते हैं कि रसभावादि के ज्ञाता कवि केवल ओज या प्रसाद गुण का ही अनुसरण नहीं करते किन्तु दोनों की यथावसर अपेक्षा रखते है। ७४वें श्लोक[४] के अनुसार माघ का कथन है कि कुशल कवि कोमल कान्त पदावली को भी अर्थगौरवयुक्त प्रसाद, माधुर्य, ओज आदि गुणों से निर्मित वैचित्र्ययुक्त बना देते हैं। इन विवेचनों से स्पष्ट है कि महाकवि माघ काव्य रस, गुण, अलंकार आदि सभी को आवश्क मानते हैं। उनकी दृष्टि में रस, गुण, अलंकार आदि सभी को आवश्यक मानते हैं। उनकी दृष्टि में सरस, गुणयुक्त, दोषरहित तथा सालंकार रचना ही काव्य है।

माघ का पाण्डित्य

सर्वतन्त्र स्वतन्त्र पाण्डित्य लेकर उपस्थित होते हैं। व्याकरण, राजनीति, सांख्य, योग, बौद्ध, दर्शन, वेद–पुराण, अलंकारशास्त्र, कामशास्त्र, संगीत और यही नहीं अश्वविद्या एवं हस्तविद्या के भी अच्छे जानकार है। इतनी विविध का पाण्डित्य किसी अन्य संस्कृत कवि में नहीं मिलता। कतिपय उद्धरणों से उनके व्यापक पाण्डित्य का परिचय निम्न प्रकार दिया जा सकता है :

वेद–विषयक ज्ञान; माघ वैदिक विज्ञान में सिद्धहस्त थे। चतुर्दश सर्ग में उन्होंने यज्ञ के प्रसंग में वैदिक काण्ड का बहुत ही शास्त्र सम्मत निरूपण किया है। वैदिक पारिभाषिक शब्दावली अनायास ही श्लोकों में प्रयुक्त चली गई है। जैसे–

शब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यिलक्षणविदोऽनुवाक्यया। याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन्द्रव्यजातमपदिश्य देवातम्।। सप्तभेदकरकल्पितस्वरं साम सामविदसङ्गमुज्जगौ। तत्र सुनृतगिरश्च सूरयः पुण्यमृग्यजुषमध्यगीषत।।

पुराण; भाव ने पुराणों का प्रगाढ़ अनुशीलन किया था। उन्होंने ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग किया है, जो किसी न किसी पौराणिक आख्यान की ओर संकेत करते हैं। उदाहरणार्थ – नारद के लिए 'चिरन्तनो मुनि', 'हिरण्यगर्भाङ्गभू', बलराम के लिए 'सरिपाणि', 'रेवतीजानि', 'मुसलपाणिं', सूर्य के लिए 'अनूरुंसारथि', श्रीकृष्ण के लिए 'मुरद्विष्' आदि शब्दों का प्रयोग है।

व्याकरण; माघ बहुत बड़े वैयाकरण थे। उन्होंने उपमा देते हुए कहा है कि शिशुपाल की आज्ञा यद्यपि भले ही छोटी हो, परन्तु उसका कोई प्रतिरोध नहीं कर सकता, जैसे व्याकरणशास्त्र की परिभाषाएँ संक्षिप्त होने पर सर्वत्र प्रतिष्ठित और मान्य है– *परितः प्रमिताक्षरापि सर्वं विषयं व्याप्तवती गता प्रतिष्ठाम्। न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चित्परिभाषेव गरीयसी यदाज्ञा।।*

चतुर्दश सर्ग में श्रीकृष्ण के महत्त्व को बतलाते हुए कवि ने धातुओं के कर्तृवाच्य और कर्मवाच्यत्व का सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में सृज् विसर्गे, संहारार्थक सम्+हृ धातु, तथा शासु अनुशिष्टों धातु कर्तृवाच्य में ही प्रयुक्त होती है। अर्थात् 'हरी सृजति, हरिः संहरति, हरिः शास्ति' इस प्रकार से तीनों धातु श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में सदा कर्तृवाच्य प्रत्यय से ही संयुक्त रहती हैं कभी कर्मवाचक प्रत्यय के साथ प्रयुक्त नहीं होती अर्थात् 'हरीं सृजति, हरिं संहरति, हरिं शास्ति' ऐसा प्रयोग कभी नहीं होता क्योंकि श्रीकृष्ण ही जगत्कर्ता, जगन्नियन्ता और जगत्संहर्ता है। परन्तु 'ष्टुं स्तुतौ' धातु सदा इसके विपरीत प्रयुक्त हाती है। अर्थात् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में वह कर्मवाच्य में कर्मवाचक प्रत्ययों से ही युक्त होती है। अर्थात् 'हरिं स्तौति' यही प्रयोग होता है, 'हरिः स्तौति' नहीं, क्योंकि सभी सुरासुर भगवान् की स्तुति करते हैं, भगवान् किसी की स्तुति नहीं करते– *केवलं दधति कर्तृवाचिनः प्रत्ययानिह न जातु कर्मणि। धातवः सृजतिसंहृशास्तयः स्तौतिरत्र विपरीतकारकः।।*

'पा रक्षणे' और 'पा पाने' धातुओं के क्रमशः रक्षा करना और पीना अर्थ है। कवि ने बतलाया है कि भगवान् श्रीकृष्ण का बाण एक ही साथ, एक ही काल में दोनों धातुओं का अर्थ प्रकट करता है। वह जगत् की तो रक्षा करता है और शत्रुओं के रक्त का पान करता है– *उद्धतान्द्विषतस्तस्य निघ्नतो द्वितयं ययुः। पानार्थे रुधिरं धातौ रक्षार्थे भुवनं शराः।।*

साहित्य; महाकवि माघ भट्टि की भाँति केवल वैयाकरण ही नहीं थे, अपितु काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों के पूर्ण ज्ञाता थे। 'शब्दार्थौ काव्यम्' इस सिद्धान्त का उन्होंने निर्देश किया है। रस और भाव–वेत्ता कवि के लिए ओज या प्रसाद में ही रचना करना अनिवार्य नहीं है। स्थायी भाव के लिए संचारी भाव उपकारक होते हैं। इस सिद्धान्त का भी उन्होंने संकेत किया है।

उन्होंने न केवल श्रव्य–काव्य अपितु नाट्यशास्त्र विषयक सिद्धान्तों का भी बड़ी सुन्दरता से उल्लेख किया है। मुख में मोटे और क्रमशः पुच्छ भाग में पतले होते हुए सर्प मुख–सन्धि में विस्तृत एवं प्रतिमुख आदि सन्धियों में गोपुच्छ के समान संक्षिप्त होते हुए, नाट्यशास्त्र के ज्ञाता कवियों में रचे गये काव्य में ग्रथित अंकों वाले नाटकों के विस्तार के समान सुशोभित हुए– *दधतस्तनिमानमानुपूर्व्या बभुरक्षिश्रवसो मुखे विशालाः। भरतज्ञकविप्रणीतकाव्यग्रथितांका इव नाटकज्ञाः।।*

सङ्गीत; महाकवि माघ संगीतशास्त्र के भी पण्डित थे। गायन, वाद्य, ताल, लय, स्वर आदि संगीत के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग उनके संगीतशास्त्र के सूक्ष्म ज्ञान का परिचायक है। उन्होंने अनेक स्थलों पर संगीतशास्त्र के सिद्धान्तों का दिग्दर्शन किया है। जैसे– *रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः। स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः।।*

उन्होंने किस समय कौन–सा स्वर उपयुक्त रहता है– इसका संकेत भी किया है। प्रातःकाल में पंचम, अड्ज तथा ऋषभ से गायन का निषेध किया गया है। अतः बन्दियों ने भगवान् श्रीकृष्ण को इनसे रहित संगीत द्वारा जगाने का उपक्रम किया– *श्रुतिसमाधिकमुच्चैः पंचमं पीडयन्तः, सततमृषभहीनं भिन्नकीकृत्य षड्जम्। प्रणिजगदुरकाकुश्रावकस्निग्धकण्ठाः, परिणतिमिति रात्रे– र्मागधा माघबाणः।।*

राजनीति; माघ राजनीतिशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। सम्पूर्ण द्वितीय सर्ग में राजनीति का ही वर्णन है। षड्गुणा, शक्तित्रय, अंग– पंचम, विजिगीषु द्वादशः, राजमण्डल आदि पारिभाषिक शब्दों का उन्होंने बहुत सावधानी से प्रयोग किया है। नीति का चरम लक्ष्य उन्होंने अपने उत्कर्ष एवं शत्रु की हानि की बताया है– ''आत्मोदयः परज्यानिर्द्वयं नतिरितीमती।'' उपकार करने वाले शत्रु के साथ ही सन्धि कर लेनी चाहिए, किन्तु अपकार करने वाले मित्र के साथ नहीं– *उपकर्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणाप– कारिणा। उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः।* जो व्यक्ति अमर्षी शत्रु से वैर करके उदासीन हो जाता है, वह घास के

ढेर में चिनगारी फैंक कर हवा की ओर मुँह करके सोता है। अपमान सहकर भी जिसमें कोई प्रतिक्रिया नहीं होती ऐसे व्यक्ति से तो वह धूल ही अच्छी है, जो ठोकर मारने पर प्रतीकार की बुद्धि से सिर पर चढ़ जाती है– *पादाहतं यदुत्थाय मूर्धान– मधिरोहति। स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः।* इसी प्रकार अनेक उदाहरण उनके काव्य में द्रळटव्य है।

आयुर्वेद; महाकवि माघ आयुर्वेद के भी ज्ञाता थे। उन्होंने आयुर्वेद शास्त्र के विभिन्न अंगों का अध्ययन किया था। कहीं–कहीं तो वे स्वयं को एक वैद्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं– *स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति?*

कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो पसीने से शान्त होने वाले आमज्वर को जल से सींचेगा? तात्पर्य यह है कि ज्वर पसीने से शान्त होता है। यदि उसे जल से स्नान करा दिया जाय तो वह और बढ़ जाता है।

राजयक्ष्मा रोग को रोगों का राजा बताते हुए कवि कहते हैं– *राजयक्ष्मेव रोगाणां समूहः स महीभृताम्।*

इसके अतिरिक्त रसायन सेवन की विधि, व्यायाम की उपयोगिता, किस रोग में उपवास करना अभीष्ट है? आदि विषयों का भी यथास्थान विवेचन किया गया है।

ज्योतिषशास्त्र; अन्यान्य शास्त्रों की भाँति ज्योतिष पर भी महाकवि माघ का पर्याप्त अधिकार था। इस शास्त्र के अनुसार नक्षत्रों में पुष्प नक्षत्र को सर्वसिद्धिकारक माना गया है। उसी का उल्लेख करने के लिए कवि ने 'पुष्यरथ' की उपमा 'पुष्प नक्षत्र' से दी है। पुष्प नक्षत्र की ही भाँति पुष्यरथ सर्व–सिद्धि कारक है। उन्होंने प्रथम सर्ग में ज्योतिषशास्त्र सम्मत केतु के उदय का दुष्परिणाम बताया है– *व्योम्नीव भ्रकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम्।*

पशुविज्ञान; माघ को पशुविद्या का भी ज्ञान था। अतएव उन्होंने हाथी, घोड़े, ऊँट, खच्चर आदि पशुओं की प्रकृति का बहुत सुन्दर चित्रण किया है। सत्रहवें सर्ग में उन्होंने गजविद्या का विस्तार से वर्णन किया है। हाथी दोनों नेत्र, दोनों कपोल, सूंडद्व मलेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रि–इन सात स्थानों से मद गिराते है। हाथियों को वश में करने के उपाय तथा गम्भीर वेदी गज का लक्षण भी उन्होंने अपने काव्य में किया है– *प्रत्यन्यनागं चलितस्तवशवता निरस्य कुण्ठं दधतान्यमङ्कशम्। मूर्धानमूर्ध्वायतदन्तमण्डलं धुवन्नरोधि द्विरदो निषादिना।।*

शालिहोज के अनुसार माघ को अश्वविद्या का सूक्ष्म ज्ञान था। उनके अनुसार घोड़े को उत्तम, मध्यम और अधम आदि तीनों प्रकार के चाबुकों से चलाया जाता था। घोड़े तदनुसार गति से ही गमन करते थे, वे क्रमशः तेज, मध्य और मन्दगति चलते थे– *तेजोनिरोधसमतावहितेन यन्त्रा, सम्यक् कशात्रयाविचारवता नियुक्तः। आरदृजश्चटुलनिष्ठुरपातमुच्यैश्चित्रं चकार पदमर्धपुलायितेन।।*

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि माघ का पाण्डित्य सर्वातिशायी था।

सन्दर्भ ग्रन्थ

शिशुपालवधम् –(हिन्दी व्याख्याकार) डॉ० केशवराव मुसलगाँवकर, प्रकाशक–चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, संस्करण–द्वितीय २०१३

मनुस्मृति– (व्याख्याकार) स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, प्रकाशक–पुस्तक मन्दिर मथुरा।

१०८ उपनिषद्– पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक– संस्कृति संस्थान, बरेली २००७

प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास– जयशङ्कर मिश्र, प्रकाशक– बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, अष्ठ संस्करण–१९९९

प्राचीन भारतीय शासन पद्धति– प्रो० अनन्त सदाशिव अलतेकर, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण–२००१

महाभारतकालीन समाज– सुखमय भट्टाचार्य, (अनुवादिका) पुष्पा जैन, प्रकाशक –लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–१९६६

नीतिशास्त्र का सर्वेक्षण– संगमलाल पाण्डेय, प्रकाशक–सेण्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, सप्तम संशोधित संस्करण।

भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास– पी०एन० चोपड़ा, बी०एन० पुरी एवं एम०एन० दास, प्रकाशक–मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली १९७५

संस्कृति के चार अध्याय – रामधारी सिंह 'दिनकर', प्रकाशक– राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५६।

संकेत

[१]नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे। शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते।।२।८७

[२]स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावा: संचारिणो यथा। रसस्यैकस्य भूयासस्तथा नेतुर्महीभुज:।।२।८७

[३]नैकमोज: प्रसादो वा रसभावविद: कवे:।।२।८३

[४]भ्रदीयसीमपि घनामनल्पगुणकल्पिताम्। प्रसारयन्ति कुशलाश्चित्रां वाचं पटीमिव।।२।७४

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,72-74**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 16 अप्रैल 2017

रससिद्धान्त का इतिहास

अखिलेश नारायण मिश्र*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *रससिद्धान्त का इतिहास* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र का लेखक मैं *अखिलेश नारायण मिश्र* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैंने शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

रससिद्धान्त की स्थापना व प्रतिष्ठा का श्रेय 'नाट्यशास्त्र' के रचयिता भरतमुनि को प्राप्त है। आचार्य भरत के पूर्व भी 'रस' शब्द का प्रयोग होता रहा है। ऋग्वैदिक काल में रस का प्रयोग विभिन्न अर्थों में होता रहा है। ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में इसका प्रयोग गौ–दुग्ध, मधु, सोमरस आदि अर्थ के रूप में हुआ है।[१] उपनिषदों में इसे सारभूततत्व, ब्रह्म आदि के लिए भी प्रयुक्त किया गया है।[२]

आयुर्वेद में इसका प्रयोग पारद, वीर्य, शक्ति, रसायन आदि के लिए तथा 'कामसूत्र' में काम, रति, प्रेमादि के लिए हुआ है। इस प्रकार वैदिक युग से लेकर कामसूत्र तक रस शब्द का अर्थ धीरे–धीरे विकसित होता हुआ अन्ततः वह माधुर्य या आनन्द का पर्याय बन गया।

वस्तुतः आज भी 'रस' शब्द का प्रयोग अलग–अलग क्षेत्रों एवं प्रसंगों में अलग–अलग अर्थों में होता है। वनस्पतियों एवं फलों के प्रसंग में 'रस' का अर्थ उनके सारभूत 'तरल पदार्थ' से लेते हैं तो विभिन्न खाद्यपदार्थों एवं व्यञ्जनों के प्रसंग में कटु, तिक्त, मधुर, कषायादि स्वादों के लिए उसका प्रयोग करते हैं। आयुर्वेद में पारद से बनी विशेष प्रकार की औषधियों को 'रस' एवं 'रसायन' की संज्ञा दी जाती है। सौन्दर्य एवं प्रेमादि में 'मधुर अनुभूति' को रस कहा जाता है।

जीवन के प्रसंग में भी सामान्यतः रस का अर्थ 'आनन्द' होता है। अस्तु समष्टिरूप में 'रस' शब्द माधुर्य और आनन्दपूर्ण अनुभूति का द्योतक है। अतः भरतमुनि ने रस का प्रयोग नूतन अर्थ में न कर उसकी प्रक्रिया व निष्पत्ति की व्याख्या शास्त्रीय ढंग से करके उसे व्यवस्थित रूप प्रदान किया है।

भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में चार नाट्य अंगों का उल्लेख किया है– (१) पाठ्य (२) गीत (३) अभिनय (४) रस। इसमें रस का स्थान सर्वोपरि बताया। उनके अनुसार 'नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते'[३] अर्थात् रस के बिना नाट्य का कोई अन्य अर्थ प्रवर्तित ही नहीं होता है। रस नाट्य का मूल है।

* शोध छात्र, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक २०१७, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

रस तथा भाव को नाट्य का आधार मानते हुए वे इन दोनों को प्रस्तुत करते हैं– *न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रस विवर्जितः। परस्पर कृता सिद्धिस्तयोरभिनये भवेत्।।;* अर्थात् भावों के विना रस नही रहता और रस के विना भाव। अभिनय के द्वारा रस एवं भाव परस्पर मिलकर एक दूसरे के आश्रय से स्वयं सिद्ध होते हैं। चतुर्विध अभिनय के द्वारा कवि के हृदयगत आशय का ज्ञान करा देने वाले को 'भाव' कहते हैं– *वागगंमुखरागेण सत्वेनाभिनयेन च। कवेरन्तर्गतं भावं भावयन्भाव उच्यते।।*

विभिन्न सन्दर्भों में रस का अर्थ

एक प्रसिद्ध सूक्ति है– *रसो वै सः।* अर्थात् वह परमात्मा ही रस रूप आनन्द है। 'कुमारसम्भव' में पानी, तरल और द्रव के अर्थ में रस शब्द का प्रयोग हुआ है। 'मनुस्मृति' में रस का अर्थ मदिरा है। 'वैशेषिक दर्शन' में चौबीस गुणों में एक गुण का नाम रस है। जिसके अन्तर्गत छः रस माने गये हैं– कटु, अम्ल, मधुर, लवण, तिक्त और कषाय। स्वाद, रूचि और इच्छा के अर्थ में भी कालिदास रस शब्द का प्रयोग करते हैं। प्रेम की अनुभूति लिए 'कुमारसम्भव' में रस शब्द का प्रयोग हुआ है। 'रघुवंश' में रस का प्रयोग आनन्द और प्रसन्नता के अर्थ में किया गया है। 'काव्यशास्त्र' में किसी कविता की भावभूमि को रस कहते हैं और रसपूर्ण वाक्य को काव्य कहते हैं।

'भर्तृहरि' सारतत्त्व और सर्वोत्तम भाग के अर्थ में रस शब्द का प्रयोग करते हैं। आयुर्वेद में शरीर के संघटक तत्त्वों के लिए रस शब्द का प्रयोग हुआ है। सप्तधातुओं को भी रस कहते हैं। पारे को आयुर्वेद में रसेश्वर या रसराज कहा गया है। रसज्ञाता को रसग्रह कहा गया है। उत्तररामचरितम् में इसके लिए 'रसज्ञ' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'साहित्यदर्पण' प्रत्यक्षीकरण और गुणा– गुण विवेचन के अर्थ में 'रसपरीक्षा' शब्द का प्रयोग करता है।

यद्यपि काव्य में रसतत्त्व के प्राचीनतम् व्याख्याकार आचार्य भरत सिद्ध होते हैं, परन्तु काव्यमीमांसा में आचार्य राजशेखर ने रस के सन्दर्भ में भरत से भी प्राचीन परम्परा का उल्लेख किया है। राजशेखर की दृष्टि में रसाधिकारिक के आदि प्रवचनकार नन्दिकेश्वर है। वात्स्यायन प्रणीत 'कामसूत्र' की टीका में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि भरत ने रसों का निरूपण वही से लिया है। इस प्रकार प्राचीन शास्त्रीय परम्पराओं से प्रायः यह सिद्ध होता है कि नाट्यशास्त्रकार आचार्य भरत को रसतत्व का ज्ञान नन्दिकेश्वर से ही प्राप्त हुआ था।

भरत ने सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र के छठे एवं सातवें अध्याय में रसतत्त्व की व्याख्या की हैं। भरत का रससूत्र[४] ही अगली दो सहस्राब्दियों तक रसविवेचन का आधार बना रहा। लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक तथा अभिनवगुप्त ने यदि रससूत्र की सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्याख्याएँ की तो आनन्दवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ, भानुदत्त तथा पण्डितराजजगन्नाथादि प्रतिभाशाली आचार्यों ने 'रस' का काव्यरूप में व्यवस्थित एवं समायोजित किया। काव्यात्मा के सन्दर्भ में स्थापित प्रायः सभी रसेतर सम्प्रदाय के आचार्यों ने भी 'रस' की उपेक्षा नहीं करते हैं।

यदि अलंकारवादी भामह, दण्डी, उद्भटादि रस को रसवत् अलंकार के रूप में सहर्ष स्वीकार करते हैं, तो ध्वनिवादी आनन्दवर्धन उसे रसध्वनि के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। कुन्तक की 'वक्रोक्ति' तथा क्षेमेन्द्र का 'औचित्य'[५] भी रस की ही पृष्ठभूमि पर आधारित है।

रससिद्धान्त का विवेचन अभिनवभारती में विस्तार से हुआ है जिसका विस्तृत वर्णन मैंने अपने शोध विषय के द्वितीय अध्याय में किया है। अभिनवभारती की अपेक्षा ध्वन्यालोक एवं लोचन में रस का विवेचन कम विस्तृत है। समालोचक, कवि, ध्वन्यालोक तथा नाट्यशास्त्र के टीकाकार आचार्य अभिनवगुप्त ने रस के सन्दर्भ में स्वयं इस प्रकार कहा है– *नाट्यरसाः स्मृताः। नाट्याद्समुदायरूपाद रसाः,/ यदि वा नाट्यमेव रसाः। रससमुदायो हि नाट्यम्।*

सामान्यरूप से रस का अर्थ 'आस्वाद' है, परन्तु इसका लाक्षणिक अर्थ है– 'काव्य तथा नाटक में सौन्दर्य की भावात्मक रसानुभूति।' मम्मट ने काव्यप्रकाश में कवि की रचना को 'आह्लादैकमयी' स्वीकार किया है। इसका तात्पर्य है– जिसमें आनन्दमात्र अनुभूत हो।

आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में रसवत् अलंकार को आठ रसों में से एक रस पर आधारित माना है।[६] आचार्य भामह भी रसों से परिचित थे परन्तु वे काव्य में इसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व नहीं मानते थे।[७] भामह ने ही महाकाव्य के विषय में कहा है कि ये विविध रसों से युक्त होने चाहिए।[८] वामन ने भी रसों के विषय में उल्लेख किया है।[९]

संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रारम्भिक लेखकों के द्वारा स्वतंत्र रूप से रस का विवेचन नहीं किया गया है। रूद्रट ही पहले लेखक हैं जिन्होंने अपने काव्यालंकर में रसों का विवेचन किया है। भरत के नाट्यशास्त्र में भी रस प्रमुख विषय नहीं है। नाट्य प्रदर्शन से इसका सम्बन्ध होने के कारण इसका विवेचन किया गया है। अभिनवभारती के अनुसार समस्त नाट्यप्रदर्शन में 'रस' सूत्र के समान पिरोया हुआ होता है।

'भावप्रकाशन' में कहा गया है कि रस 'सामाजिक आश्रय' है और काव्यास्वाद आठ प्रकार का है– *अष्टावेवानुभूयन्ते तासूक्तास्तै रसाः पृथक्। सामाजिकैस्तु रस्यन्ते यस्मात्तस्माद्रसाः स्मृताः।।* (–भावप्रकाशन)

'नाट्यदर्पण' में रस में दु:ख की स्थिति के सिद्धान्त का विवेचन विस्तार से आया है। 'शृंगारप्रकाश' में भी रस की सुख दु:ख अवस्था रूप का वर्णन मिलता है।[१०]

आनन्दवर्धनाचार्य ने ध्वन्यालोक के चतुर्थ उद्योत में यह स्पष्ट किया है कि महाभारत का अंगीरस 'शान्त' एवं रामायण का 'करुणरस' है।[११] यदि नाटक को अवस्थानुकृति: कहा जाता है तो शान्तरस को कुशल अभिनेताओं द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है। अभिनवगुप्त ने शान्तरस को सर्वश्रेष्ठ माना है और इसका सम्बन्ध मानव जीवन के अन्तिम उद्देश्य 'मोक्ष' से स्थापित किया है।[१२]

इस प्रकार प्रथम अध्याय के अन्तर्गत रस सम्प्रदाय के विभिन्न आचार्यों के रसविषयकमत को प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ

[१] *'जन्मे रसस्य वावृधे।'* –ऋग्वेद, १–३७–५ एवं *'स्वादू रसो मधुपेयो वराय'।* –ऋग्वेद, ६–४४–२१

[२] *'प्राणो वा अंगानां रसः।'* –वृहदारण्यकोपनिषद् एवं *'रसो वै सः।'* –तैत्तिरीयोपनिषद्

[३] *भरतकृतनाट्यशास्त्र*

[४] *विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसरसनिष्पत्तिः*

[५] *अनौचित्यादृते नान्यत् रसभंगस्य कारणम्।–* ध्वन्यालोक

[६] कामं सर्वोऽप्यलंकारो रसमर्थे निषिंचति

[७] *रसवद्दर्शितस्पष्टशृंगारादिरसं यथा*

[८] *युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च विविधैः पृथक*

[९] *दीप्तिरसत्वं कान्तिः*

[१०] *रसा हि सुखदु:खावस्थारूपाः*

[११] *यथा रामायणे यथा वा महाभारते। रामायणे हि करुणो रसः।।–*ध्वन्यालोक

[१२] *सर्वरसानां शान्तप्राय एवास्वादः।–* अभिनवभारती

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2017) **11,75-87**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 30 जून 2017

निर्मल वर्मा कृत उपन्यास 'अन्तिम अरण्य' : एक अध्ययन

डॉ० आशा वर्मा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *निर्मल वर्मा कृत उपन्यास 'अन्तिम अरण्य' : एक अध्ययन* शीर्षक लेख/ शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *आशा वर्मा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख/ शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख/ शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इस छपने के लिये भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध प्रपत्र आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

'अन्तिम अरण्य' दो हजार में प्रकाशित निर्मल वर्मा का अन्तिम उपन्यास है, जो उन्हें एक वरिष्ठ और समर्थ उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठापित करता है। इस उपन्यास की विशेषता यह है कि इसमें केवल आत्मविस्तार की ही अभिव्यक्ति नहीं है, यह मृत्यु से सीधे–सीधे साक्षात्कार का भी उपन्यास है। यह उपन्यास मृत्यु से साक्षात्कार को एक ऐसी प्रार्थना में परिवर्तित कर देता है, इसके पश्चात् मृत्यु कम से कम भयानक और डरावनी चीज नहीं रह जाती। 'अन्तिम अरण्य' के गद्य के बारे में अधिकांश आलोचकों ने सकारात्मक दृष्टि अपनाई है। प्रकाश मनु इसके गद्य को 'हिन्दी का सबसे अच्छा गद्य' मानते हैं।[1]

कथानक

'अन्तिम अरण्य' उपन्यास एक अधिकारी मेहरा साहब को केन्द्रित कर लिखा गया है, जो रिटायर्ड हो चुके है और अपनी पत्नी दीवा के साथ निर्जन पहाड़ी कस्बे में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। दीवा मेहरा साहब के जीवन के अनुभवों को लिखने के लिए एक विज्ञापन अखबार में देती है – 'जिसमें किसी पढ़े–लिखे युवक की माँग की गई थी, जो उनके रिटायर्ड पति के साथ हर रोज कुछ घंटे बिता सकें और उनकी छोटी–छोटी जरूरतों को पूरा कर सके .....वे जरूरतें क्या होगी, इसका कोई हवाला विज्ञापन में नहीं दिया गया था। इसके एवज में आवेदनकर्त्ता को (उसकी नियुक्ति पर) मुफ्त की बोर्डिंग और लाजिंग ही दी जा सकेगी.....।[2] इस विज्ञापन को पढ़कर लेखक उस पहाड़ी कस्बे में आता है जहाँ सभी लोग जीवन के अन्तिम पड़ाव पर थे। लेखक प्रतिदिन मेहरा साहब के अनुभवों को बाँटता है और लेखनीबद्ध करता है। धीरे–धीरे लेखक का मेहरा साहब से विशेष लगाव हो जाता है। इसी लगाव के चलते लेखक दीवा की मृत्यु के बाद भी, डाक्टर सिंह, निरंजन बाबू और अन्ना जी के बार–बार कहने के बाद भी मेहरा साहब को छोड़कर नहीं जाता। वह मेहरा साहब के प्रति विशेष प्रकार का उत्तरदायित्व अनुभव करने लगता है।

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी०बी०एस० कॉलेज, कानपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक २०१७, एम०पी०ए०एस०वी०ओ० मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

मेहरा साहब इस उपन्यास के मुख्य पात्र हैं। सम्पूर्ण उपन्यास मेहरा साहब की आसन्न मृत्यु और उससे उत्पन्न स्थितियों पर रचा गया है। मृत्यु उनके करीब आ रही है लेकिन वे उससे डरे हुए नहीं हैं बल्कि सहजता और जीवन्तता से मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हैं। डॉ० सिंह लेखक और मुरलीधर उनसे मृत्यु सम्बन्धी तथ्य छिपाना चाहते हैं लेकिन मेहरा साहब खुद इनसे अपनी मृत्यु के विषय में वार्तालाप करते हैं। वे मुरलीधर से कहते हैं, 'तुमने कभी मेरे लिए मनौती माँगी है मुरलीधर?' "जी नहीं.... कभी सोचा भी नहीं।" "क्यों, क्यों नहीं?" आपको किस बात की कमी है आपके पास सब कुछ है।"[३] वे लेखक से अपने मरने के बाद अपने संस्मरणों से बनने वाली छवि के बारे में पूछते हैं – "तुमने मेरे बारे में इतनी नोट बुक्स भरी है.....यह बताओ जो उन्हें पढ़ेगा वह मेरे बारे में क्या सोचेगा। हाँ मैं उसे कैसा दिखाई दूँगा? अगर मैं जीवित नहीं रहा तो कैसे शक्ल सूरत उसके दिमाग में आयेगी।[४]

तिया डॉ० मेहरा की पुत्री है अपने माता–पिता के स्नेह से वंचित तिया अपने आप में अकेली सी नजर आती है। डॉ० तिया मेहरा साहब से प्रेम के साथ–साथ घृणा भी करती है क्योंकि माँ के घर छोड़कर जाने का कारण वह मेहरा साहब को ही मानती है। तिया अवकाश लेकर मेहरा साहब के पास कुछ समय के लिए आती है लेकिन उनके पास रुकती नहीं है तिया के मन में मेहरा साहब की अपेक्षा उन मरीजों के प्रति कहीं अधिक सहानुभूति है जो उसके अस्पताल में इलाज करवाने आते हैं। वह सरकारी डिस्पेंसरियों में दवा बाँटने के लिए भी जाती थी उसे आशा है कि इन डिसपेंसरियों में एक उसे अपनी माँ मिल जायेगी वह कहती भी है –"आज भी जब मैं गाँव की सरकारी डिसपेंसरियों में दवाइयाँ बाँटने जाती है तो सोचती हूँ वह कहीं दिखाई दे जायें।"[५] निरंजन बाबू मेहरा साहब के मित्र हैं दिल्ली विश्वविद्यालय की प्रोफेसर की नौकरी छोड़कर इस पहाड़ी कस्बे में सेब की खेती करते हैं और सीजन के बाद निरंजन बाबू जयपुर चले जाते हैं। निरंजन बाबू दर्शन की गुत्थियों को सुलझाते–सुलझाते जीवन की गुत्थियों में उलझ गये हैं। लेखक के अनुसार – वह कोई सन्त, सन्यासी नहीं। पूरी हरी–भरी गृहस्थी थी.....यूनिवर्सिटी में मनचाही नौकरी कर सकते थे फिर कैसे यहाँ आने का निर्णय ले लिया, यह अभी तक मेरे लिए रहस्य बना था। क्या कोई भीतर ऐसा कष्ट था, जो किसी को नहीं बताते थे, जिसे चुपचाप झेलते यहाँ चले आये थे? पर ऊपर से तो दिखाई नहीं देता था? सिर्फ चेहरे पर कभी–कभी छाया सी चली आती थी? क्या कुछ ऐसा था, जिसे वह पीछे छोड़ आए?.....क्या उसी की थाह पाने लोग इतने ऊपर चले आते हैं, जहाँ खड़े होकर अपनी बीती हुई जिन्दगी के खण्डहरों को देख सकें? लेखक से निरंजन बाबू की पुरानी मित्रता है उसके अनुसार उम्र से मुझसे बड़े होने पर भी गुजरी हुई उम्र हमारे बीच नहीं आती थी। हर बार हम वही मिलते थे, जहाँ से जुदा हुए थे। जुदाई के दिन बीच में झर जाते थे लगता था कि वह वहीं है.....यूनिवर्सिटी के लॉन पर जैसा बीस साल पहले मैंने काफी हाउस के पास छोड़ा था। किताबों के गट्ठर के साथ जो वह लाइब्रेरी में लाते थे। तब कौन जानता था कि हम अपने रास्तों पर इतनी दूर निकल जाएँगे और जब मिलेंगे.....तो बिल्कुल अकस्मात्.....एक ऐसी जगह जो न उनकी थी, न मेरी। अगर मैंने 'स्टेट्समैन' में मिसेज मेहरा का गोपनीय आमन्त्रण न देखा होता, तो आखिरी तक पता नहीं चलता, वह यहाँ है.....इस निर्जन उजाड़ में.....जहाँ कभी मुझे आना था?[६] इसी मित्रता के कारण निरंजन बाबू लेखक के बाद यहाँ से चले जाने को कहते हैं। अन्ना जी युद्ध के बाद जर्मनी छोड़कर भारत आ गई है वे कई जगह गवर्नेस रहने के बाद इस पहाड़ी कस्बे में बस गई है और यहाँ पर ऐसे रहती है जैसे यही पर रहती रही है और यही पर हमेशा रहेगी वह निरंजन बाबू से कहती हैं – "हिन्दुस्तान आपके लिए होगा.....मेरे लिए तो यह पहाड़ी शहर ही सब कुछ है.....यह मेरा घर है– आपका हिन्दुस्तान मुझे यहाँ से उतना ही लगता है, जितना जर्मनी।[७] मेहरा साहब के डॉक्टर डॉ० सिंह हैं जो अपना क्लिनिक चलाते हैं वे अपने घोड़े सेबास्टियन के साथ मरीजों का देखने जाते हैं। मेहरा साहब के चेक अप के लिए भी उनके घर आते हैं – "वह ऐसे ही थे डाक्टर सिंह। दुनिया के आदमी थे, लेकिन उसके साथ नहीं थे– अपनी दुनिया अपने साथ लेकर चलते थे..... .आर्मी के डाक्टर होने के नाते उनकी पोस्टिंग बहुत से शहरों में होती थी.....रिटायर होने के बाद उन्होंने अपनी प्रैक्टिस इस शहर में शुरु की थी। क्लीनिक नीचे बाजार में था, लेकिन घर ऊपर था। घोड़े पर चढ़कर वह रोज ऊपर नीचे जाया करते थे।[८]

मृत्यु इस उपन्यास की मूल संवेदना है। मृत्यु एक छाया की तरह पूरे उपन्यास को आच्छादित किये हुये है। लेकिन उपन्यास के पात्र मृत्यु सहजता से स्वीकार करने का प्रयास करते दृष्टिगोचर होते हैं। लेखक, डॉक्टर सिंह, निरंजन बाबू, अन्ना जी मेहरा साहब की ओर आती हुई मृत्यु को अनुभव कर रहे हैं। यह अनुभूति उन्हें मेहरा साहब ही नहीं स्वयं अपने जीवन के प्रति भी

कारुणिक बना रही है। इसी अनुभव के चलते हुए जीवन की सार्थकता और नश्वरता पर चिंतन करते हैं। यहाँ मृत्यु अनहोनी नहीं बल्कि जीवन को संपूर्णता देने वाली घटना लगती है, इस प्रकार पूरा उपन्यास मृत्युपर्यन्त जीवन की जिजीविशा का उपन्यास है।

पात्रा विधन और चरित्रांकन

'अन्तिम अरण्य' उपन्यास में पात्रों की संख्या कम है इसीलिए उनके चरित्रांकन में स्वाभाविकता, सजीवता, मौलिकता और अन्तर्द्वन्दात्मकता आदि का कलात्मक निदर्शन मिलता है।

'अन्तिम अरण्य' उपन्यास के पात्र–विधान में महत्वपूर्ण चरित्र मेहरा साहब का है। वह इस उपन्यास के नायक है। मेहरा साहब एक आई०ए०एस० अधिकारी थे, जो देश–विदेश में भी रहे थे लेकिन जीवन के अन्तिम पड़ाव पर अपनी पत्नी दीवा के साथ इस पहाड़ी कस्बे में जीवन–यापन कर रहे हैं।

सम्पूर्ण उपन्यास मेहरा साहब की निकट आती मृत्यु पर आधारित है। जीवन के इन आखिरी क्षणों में मेहरा साहब के साथ रहते हुए लेखक ने उनके होने को इतना विशिष्ट माना है कि उनकी उपस्थिति में जैसे समय का एक चक्र पूरा हो जाता है। क्रमशः जिन्दगी का ग्राफ पूरा हो रहा है। मगर मेहरा साहब उस ग्राफ के बीच चट्टान की तरह हैं, डॉ० सिंह हैरान हैं कि यदि उन्हें कोई बीमारी होती तो वह उसका ईलाज अवश्य तलाश कर लेते लेकिन ऐसी परिस्थितियों में डॉ० सिंह क्या कर सकते हैं– "सत्तर बरस के ढाँचे में कितना कितना कुछ सूख गया है, बदल गया है, बह गया है.....यह मैं आपको बता सकता हूँ? शायद बता सकता, यदि कोई बीमारी होती, कोई बुखार, किसी तरह का दुःख दर्द, कोई टीस, कोई ट्यूमर.....तब उनमें से किसी को पकड़कर उनके भीतर झांक सकता था.....कौन सी जगह है, जहाँ रोड़ा अटक गया है, कैसे उसे निकाला जा सकता है.....लेकिन अगर ऐसा कुछ न हो, सब कुछ शान्त और समतल हो.....तब कोई दरवाजा नहीं, जिसे खोलकर आप उनके भीतर प्रवेश कर सकें.....क्या आप सोचते हैं कि एक्सरे की तस्वीरें देह के भेदों को भेद सकती हैं? नहीं जी यह सबसे बड़ा इल्यूजन है.....आपको लगता है सब कुछ नार्मल है, और यह सबसे बड़ी छलना है.....क्योंकि सच बात यह है कि नार्मल कुछ भी नहीं होता है.....पैदा होने के बाद के क्षण से ही मनुष्य इस अवस्था से दूर होता जाता है जिसे 'नार्मल' कहते हैं.. ....नार्मल होना देह की आकांक्षा है, असलियत नहीं। देह का अन्तिम सन्देश सिर्फ मृत्यु के सामने खुलता है, जिसे वह बिल्ली की तरह जबड़ों में दवा कर शून्य में अन्तर्ध्यान हो जाती है.....[९] मेहरा साहब जीवन के अन्तिम पड़ाव तक इसी सम्पूर्ण व्यक्तित्व और स्वास्थ्य के साथ रहे। वे अपने विगत जीवन की जीवनी लिखवाने चाहते है इसी बीच उनकी पत्नी दीवा एक लम्बी बीमारी के कारण उनका साथ छोड़ जाती है– "वह कितने कष्ट में मरी थी पेट में ट्यूमर था.....मरने के बाद जब उसे पेट से निकाला तो इतना बड़ा, जैसे टेनिस की गेंद होती है – लेकिन जब तक वह जीती थी, दर्द की इतनी सी हाय भी उनके मुँह से नहीं निकलती थी। उलटे वह मुझे दिलासा देती थी, जब मैं उन्हें देखकर बेहाल हो जाता था। जब तुम आए, तो वह थोड़ा बहुत ठीक हो चली थी। हमने सोचा था, तुम्हें उनके बारे में कुछ नहीं बतायेंगे.....इन्हीं दिनों उन्होंने तुम्हे बुलाने का निर्णय लिया था ताकि उनके जाने के बाद.....[१०] मेहरा साहब के अब जीने का सहारा केवल उनके नाम का पत्थर था तो उनकी कब्र पर बंधा हुआ है इन दिनों मेहरा साहब घटनाओं को भूलने और याद करने के भंवर में फंसे थे.....उन्हें याद आया – वह नहीं, जो मुरलीधर बताता था, बल्कि वह जिसे वह अर्सा पहले भूल चुके थे.....इन दिनों मेहरा साहब के साथ अक्सर ऐसा ही होता था – मुद्दत पहले गुजरी घटनायें ऐसे याद आती थी, जैसे अभी कल हुई हों – और जो खाली जगह छोड़ती जाती थी, उसमें गुजरी हुई घटनाएं ऐसे याद आती थी, जैसे अभी कल हुई हों – और जो खाली जगह छोड़ती जाती थी, उसमें गुजरी हुई घटनायें अपना घर बनाती जाती हैं.....क्या एक उम्र के बाद आदमी जीता एक तरफ है और भागता दूसरी तरफ? जब सचमुच जागता है, तब पता चलता है। जीने का अर्थ पता नहीं कहाँ रास्ते में छूट गया.....क्या वह सबके साथ होता है[११].....या फिर मेरे साथ हो रहा है? मेहरा साहब अपने अनुभवों को विस्तार देने में लगे हैं लेकिन पगडंडी के एक मोड़ पर उनका धैर्य समाप्त हो जाता है। लेकिन इससे ज्यादा भयानक बात क्या हो सकती है कि कोई आदमी अकेलेपन के अनजाने प्रदेश की ओर घिसटता जा रहा हो और उसके साथ कोई न हो। कोई आखिर तक साथ नहीं जाता, लेकिन कुछ देर तक तो साथ जा सकता। हर दिन गुजरने के साथ मुझे लगता है कि मैं उनके साथ कुछ और आगे निकल आया हूँ। मुझे डर है, एक दिन वे इतने आगे निकल

जायेंगे कि मुझे पता भी नहीं चलेगा, कि वे किसी पहाड़ी के नीचे लोप हो गये और वे जीवन और मृत्यु की व्याख्या करते हुए स्वयं भी मृत्यु के निकट पहुँच जाते हैं।

इस उपन्यास का दूसरा महत्वपूर्ण पात्र कथानक 'मैं'। दिल्ली महानगर का एक युवक महानगरीय भीड़–भाड़ से ऊबकर उस पहाड़ी में कस्बे शरण लेता है जहाँ मेहरा साहब की पत्नी मेहरा साहब के जीवन के विगत अनुभवों को लिखवाने के लिए अखबार में विज्ञापन देती हैं जिसके लिए पारिश्रमिक के रूप में केवल आजीविका मिलेगी अर्थात् खाना–पीना, रहन–सहन का खर्च।.....जिस दिन मैंने वह विज्ञापन पढ़ा, मैं अँधेरे से बाहर निकल आया था। मैं जीवन के ऐसे दौर से गुजर रहा था, जिसे कुछ लोग 'काईसिस आफ मिडिल एज' कहते हैं। यह मैं अब सोचता हूँ। अब हँसी आती है, क्या कोई अपने तन की त्वचा और मन की मैल से बाहर आ सकता है? कहीं भी जाओं, ये दोनों चीजें पीछा नहीं छोड़ती। लेकिन एक बात मैं जानता हूँ, यहाँ आने का मतलब एक दुनियाँ को छोड़कर दूसरी दुनियाँ में जाना नहीं था, यह अपनी ही दुनिया में अपने को दुबारा पाने का प्रयत्न.....मुझे नहीं मालूम, मैं इसमें कितना सफल हो पाया हूँ.....लेकिन कभी भी अपनी कोठरी में बैठा हुआ बारिश की बौछार, देवदारों पर गिरती हुई देखता हूँ, तो लगता है कि मेरी 'मिडिल एज' का संताप पहाड़ की अविरल शान्ति में घुल जाता है.....अगर शान्ति का मतलब लगी बँधी लीक के साथ जीना है जहाँ न किसी अचानक खुशी का झटका लगता है, न किसी खतरे का झोंका आता है।[१२] कथानक दिल्ली के अखबार स्टेट्समेन में विज्ञापन देखकर मेहरा साहब की पत्नी से मिलकर इस कार्य को स्वीकार कर लेता है। "काम भी ज्यादा नहीं है.....हफ्ते में दो बार मेहरा साहब की काटेज में जाता हूँ, वह जो कुछ कहते हैं, याद करते हैं सोचते हैं, उसे नोट कर लेता है। बीच के खाली दिनों में उन्हीं नोट्स में जरूरी काट–छाँट करता रहता हूँ, ताकि जब कोई तीसरा आदमी उन्हें पढ़े तो वे बिल्कुल ही अनर्गल न जान पड़े।[१३] मेहरा साहब की पत्नी की मृत्यु के बाद उनकी देखभाल के लिए केवल कथानायक 'मैं' ही अकेला रह जाता है। वैसे मेहरा साहब की जिन्दगी में डॉ० सिंह, निरंजन बाबू, अन्ना जी बहुत से लोग आते हैं। लेकिन 'कथानायक', 'मैं' अंततः उनके जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और उनके शरीर त्यागने के बाद उनकी अस्थियों को लेकर पारुलकोट की सरपा नदी में प्रवाहित करने जाता है – "मैंने थैली हाथ में ली और गिरता– पड़ता पानी में आया, जहाँ नदी की धारा पत्थरों से टकराती, दूधिया फेन को फैलाती पूरे वेग से बह रही थी। थैली को नीचे झुकाया ही था कि सरपा ने फूत्कारते हुए बिजली की तरह एक झटके से उन्हें मेरे हाथ से छीन लिया, अस्थियों का ढेर एक क्षण के लिए पानी की सतह पर उठा और फिर बहता हुआ आँखों से ओझल हो गया।[१४]

अन्ना जी इस उपन्यास की एक ऐसी महिला पात्र हैं, जो बरसों पहले जर्मनी छोड़कर यहाँ आई थी और उस पहाड़ी कस्बे में रहकर अपना जीवन व्यतीत करती हैं "वह जर्मन थीं, और दूसरी लड़ाई से पहले यहाँ आई थी.....उन्होंने अपना बचपन ब्लैक फारेस्ट में बिताया था, जिसके बारे में वह अनेक किस्से–कहानियाँ सुनाती थीं.....लेकिन हिन्दुस्तान आने के बाद उनकी कहानी पटरी से उतर कर अनेक पहेलियों के बीच एक साथ चलती थी....जिनके बीच किसी तरह का तारतम्य बिठाना असम्भव लगता था। कुछ वर्ष फरीदकोट के राज परिवार की गवर्नेस भी रहीं थी.....फिर राजस्थान चली गई थीं, जहाँ थार के मरु में उनकी जीवन–धारा कई वर्षों तक अगोचर रहकर आखिर हिमालय के इस डेरे पर दिखाई दी, जहाँ वह पिछले कई वर्षों से अकेली रह रही थीं।"[१५] अन्ना जी बहुत सुन्दर है "वह सचमुच कोई बूढ़ी जादूगरनी – जैसी दिखाई देती थीं.....प्राचीन जर्मन, जंगली कबीलों की कोई सम्राज्ञी, जिसके इशारे मात्र से समूचे वन्य–स्थल के जीव–जन्तु, प्रकृति का कण–कण हिलने लगते हैं.....।"[१६] "हाथ में बन्दूक, पैरों पर पुस्की, सिर पर स्कार्फ, जो दूर से साफे जैसा दिखाई देता था.....उन महाराजाओं की याद दिलाता हुआ, जिनके महलों में वह रह चुकी थी।"[१७] अन्ना जी मेहरा साहब, निरंजन बाबू और डॉ० सिंह के बीच एक ऐसी कड़ी है जिनके घर सब लोगों की मीटिंग होती थी और सिगरेट और विदेशी वाइन से वातावरण आनन्दित हो जाता है। अन्ना जी मेहरा साहब और दीवा से किताबे लाकर पढ़ा करती थीं और मेहरा साहब और मिसेज मेहरा के साथ बैडमिन्टन खेला करती थीं।

निरंजन बाबू राजस्थान के राजसी ठाठ और दिल्ली विश्वविद्यालय की प्रोफेसर की नौकरी छोड़कर इस पहाड़ी कस्बे में सेब की खेती करते हैं।'' साल के कुछ महीने यहाँ बिताते थे.....फिर नीचे की दुनिया में चले जाते थे, जहाँ उनकी पत्नी थी, बड़ी लड़की दिल्ली के किसी अखबार में काम करती थी.....एक लड़का रुड़की के इंजीनियरिंग कॉलेज में था.....एक भरा–पूरा परिवार, उनके सेब के बगीचे की तरह....जो उनके बिना भी फल–फूल रहा था.....[१८] जब निरंजन बाबू इस पहाड़ी क्षेत्र में आए थे तब – "शुरु के दिनों में तो इतना निराश हो जाता था कि सब कुछ छोड़कर–फैंककर अपने शहर लोट जाने का मन करता

था, लेकिन फिर सोचता था.....वहाँ जाकर भी क्या करूँगा, यूनिवर्सिटी की हालत को देखते ही दिल दहलने लगता.....क्या सारी जिन्दगी वहाँ पढ़ाते हुए गुजार सकूँगा जिसमें मेरा खुद विश्वास नहीं.....? लेकिन बाद में उनको यहाँ पर अच्छा लगता है – "यहाँ कम–से–कम यह सन्तोष तो रहता है कि मैं अपने को धोखा नहीं दे रहा। वैसे भी सुबह से शाम तक इतना काम रहता है कि अपने बारे में सोचने को एक पल नहीं मिल पाता। रात को जब बिस्तर पर लेटता हूँ तो यह एक बड़ी नियामत लगती है। निरंजन बाबू को सेब के व्यापार की कोई आवश्यकता नहीं है लेकिन मेहरा साहब और अन्ना जी की तरह वे भी इस कस्बे में अपने जीवन का कोई सूत्र पढ़ने आए हैं। वे यहाँ आकर अपने जीवन को नये सिरे से शुरु करना चाहते हैं – "मैं जब यहाँ आया था, तो मैंने सोचा था, मेरी नीचे वाली जिन्दगी पूरी हो गई मैं सब कुछ नये सिरे से शुरु कर सकता हूँ.....नया सिरा।[२०] लेकिन निरंजन बाबू को कोई सिरा पकड़ में नहीं आता। वे हर बार वापस जयपुर चले जाते हैं।

डॉ० सिंह इस पहाड़ी क्षेत्र के डाक्टर है जो रिटायरमेंन्ट के बाद अपनी क्लीनिक चलाते हैं। वे दिन में अपने मरीजों का इलाज करते हैं और शाम को क्लब के बार में अपनी ड्रिंक ले रहे होते हैं मेहरा साहब भी डॉ० सिंह से अपना चेकअप करवाते हैं – "महीने में एक बार मेहरा जी से मिलने बराबर आते थे। मिलने भी देखने भी.....। उम्र में बड़े होने पर भी मेहरा साहब उनसे डरते थे जिस दिन डाक्टर बाबू को आना होता था, घर की सफाई तो कराते ही थे, खुद भी साफ कपड़े पहनते थे, टाई लगाकर बैठते थे, जैसे कहीं बाहर जाना हो.....वह एक हाथ में घोड़े की लगाम और दूसरे में डाक्टर सिंह का बैग पकड़ लेता था। डाक्टर सिंह नीचे कूद जाते, क्यारियों के बीच चाबुक हिलाते हुए दोनों भीतर काफी देर तक बैठे रहते। देह का परीक्षण होता या बीते हुए का लेखा–जोखा–कहना मुश्किल था।"[२१]

दीवा, मेहरा साहब की दूसरी पत्नी है, जिसके साथ रहते हुए मेहरा साहब अपनी पहली पत्नी को याद नहीं करते। दीवा मेहरा साहब के विगत जीवन के अनुभवों को लिखने के लिए एक व्यक्ति की आवश्यकता का विज्ञापन अखबार में देती है। मेहरा साहब कभी चर्चा नहीं करते कि वह कौन थी और किन परिस्थितियों में मेहरा साहब से अलग हो गई थी। दीवा क्रिश्चियन है, और उन्हें इस बात का बोध है कि वे एक हिन्दू पति की पत्नी है, जिसे वह अन्ना जी से बातों–बातें में भावुकता के क्षणों में कह देती है। दीवा बहुत सुन्दर थी – "इतनी सुन्दर औरत मैंने बहुत कम देखी है.....जब वह मेहरा साहब के साथ यहाँ पहली बार आई थी, तो मैंने समझा था, वह उनकी बेटी? बाद में पता चला.....वह उनकी दूसरी पत्नी थी।[२२] मेहरा साहब उनके साथ छुट्टियाँ बिताने गये थे, जहाँ उनको ज्ञात हुआ कि वे एक ऐसी बीमारी से पीड़ित हैं जिसका ईलाज सम्भव नहीं – पेट में ट्यूमर होने के कारण अन्त में दीवा मेहरा साहब का साथ छोड़कर चली गई।

डॉ० तिया मेहरा साहब की बेटी है वह सुदूर पहाड़ी कस्बों में डिंसपेशरियों में जाकर दवा बाँटती है और मरीजों का इलाज करती है वह मेहरा साहब की अपेक्षा अपने मरीजों के प्रति ज्यादा समर्पित है। इसीलिए वह अपना ज्यादा समय मरीजों को ही देती है और दो–तीन महीनों में मेहरा साहब के पास आती है। यहाँ तक कि मेहरा साहब की मृत्यु के बाद वह अपने पिता का दाह संस्कार तो करती है लेकिन गंगा तर्पण का काम कथानायक 'मैं' पर छोड़कर देती है। मुरलीधर मेहरा साहब का नौकर है जो बहुत वफादारी से अपना काम करता है। वह पास के गाँव से आकर वहाँ रहता है। कथानायक 'मैं' के प्रति भी उसकी अपनी आत्मीयता है। इसके अतिरिक्त ननकू, राधा, वंसीधर, हीरालाल, रावत जी जमना अन्य पात्र हैं।

वातावरण की जीवन प्रस्तुति

मेहरा साहब की संवेदना का 'अन्तिम अरण्य' शायद मौत है जिसे हर कोई अकेले ही भोगता है। उपन्यास के अन्य पात्र भी अकेलेपन से त्रस्त और ग्रस्त हैं। इस उपन्यास में यह संसार अवसाद एवं निराशा में डूबे रूप में प्रस्तुत है। यही कारण है कि आलोचक उनके उपन्यासों को दृश्य की कसक मानकर उनके स्मृतिमय उन्माद को रेखांकित करते हैं। यही कारण है कि डॉ० त्रिभुवन सिंह कहते हैं कि – "निर्मल अपने उपन्यासों के लिए अवसादमयी स्थितियाँ चुनते हैं। इसी कारण अनुभूति का एक जैसा रूप सर्वत्र विद्यमान है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भ्रमण करते हुए निर्मल वर्मा ने अवसाद और अंतर्हीन घुटन के लिए अर्थहीन धरातल पा लिया है। युद्ध से निर्मित मानसिकता, टूटती–दरकती सभ्यता में एकाकीपन से पीड़ित व्यक्ति उनका प्रिय विषय है। निर्मल कलाकार लेखक है। मनुष्य में छिपे दर्द को कलात्मक ढंग से कुरदने का ढंग उनके पास है। दृश्य और घटनाएँ इसी कसक,

अतृप्ति और निराशा के वातावरण में डूब–डूब जाती है और पाठक उस विचित्र मनोदशा में तल्लीन हो जाता है.....वह वर्तमान चोट करता सिर्फ दुखी होता है और यह भी नहीं जानता कि ऐसा क्यों।"[२३]

यहाँ पर स्पष्ट है कि निर्मल वर्मा का स्मृति बोध एक खास मुकाम पर, खास रचनात्मकता के लिए ठहरा हुआ बोध है, जो उनकी रचनाओं में बार–बार आता है। निर्मल वर्मा ने प्रेम का चित्रण सदैव किया है। निर्मल वर्मा ने मेहरा साहब के पूरी तरह तटस्थ रहने के बावजूद अन्ना जी के पूरी तरह रागमय होने के विपरीत ढलती शामों के प्रभाव को जिस तरह अंकित किया है वह महायुद्धोत्तर समाज में उम्र के अन्तिम पड़ाव पर जी रहे वृद्ध का अनिवार्य देशकाल और वातावरण है, जिसकी मर्मान्तक त्रासदी से इन्कार नहीं किया जा सकता। भले ही यह दुनिया मेहरा साहब, अन्ना जी, निरंजन बाबू जैसे लोगों की दुनिया है, जो अर्थ के धरातल पर इतने सुखी और सम्पन्न है उनके लिए दुनिया की महंगी लाइब्रेरियाँ, महंगी शराब, महल, हिल स्टेशन और इनहिल के पैकेट सुविधानुसार उपलब्ध हैं। चाहे वे आत्मकथा लिखवाने के वास्ते किसी व्यक्ति को अधिक वेतन पर नियुक्त कर रहे हो, लेकिन मौत का अकेलापन उन्हें अपने ही धरातल पर जीना होता है। इन उपन्यास निर्मल वर्मा ने देशकाल और वातावरण की दृष्टि से एक ऐसा वातावरण को तैयार किया है, जिसमें मृत्यु एक छाया की तरह आदि से अन्त तक दृष्टिगोचर होती है। प्रकृति, पहाड़ियों की गोद में चलते हुए चरित्रों को ध्यान में रखकर सुन्दर वातावरण का निर्माण करना ही एक अच्छे कलाकार की पहचान होती है। निर्मल वर्मा ने इस उपन्यास में देशकाल वातावरण को सहजता के साथ पात्रानुकूल, घटनानुकूल वातावरण की जीवन्त प्रस्तुति की है। पहाड़ों पर पानी की किल्लत रहती है एक दृश्य प्रस्तुत है – "हम सबको बाल्टियाँ लेकर नीचे नाले पर जाना पड़ता था, जो सौभाग्य में अब भी बह रहा था। हालाँकि उसकी धार थर्मामीटर के पारे–सी बिल्कुल पतली और क्षीण दिखाई देती थी। यह नाला कॉटेज के नीचे खड्ड के भीतर चट्टानों के बीच से बहता हुआ नीचे जाता था। तेज धार की रगड़न से उसके आस–पास के पत्थर बिल्कुल चिकने और चमकीले हो आए थे। बहुत पहले वहाँ जंगल के बनैले जन्तु अपनी प्यास बुझाने आया करते थे। आज भी वहाँ लकड़हारों और चरवाहों को किसी पैंथर या लकड़बग्धे के निशान दिखाई दे जाते थे। कहते हैं किसी अंग्रेज गॉडविन ने इस नाले को खोजा था.....तब इस नाले का नाम गॉडबिन फॉल और बाद में समय की रगड़न से गुडबी नाला बनकर रह गया था। इसी गुड बी नाले से हम सबको बाल्टियों, पीपों बटलोइयों में पानी भरकर ऊपर ले जाना पड़ता था। इसमें कॉटेज, वाइट हाऊस, गेस्ट हाऊस सभी के निवासियों को एकजुट होकर काम करना पड़ता था।[२४]

संवाद

संवाद उपन्यास का प्रमुख तत्व होता है। संवादों का प्रयोग कथाक्रम को आगे बढ़ाने के लिए किया जाता है। संक्षिप्तता, मर्मस्पर्शिता, सम्प्रेषणीयता, उक्ति–वैचित्र्य, रोचकता आदि संवाद के गुण हैं। भाषा का सारल्य और लघुता संवादों में जान डाल देते हैं।

'अन्तिम अरण्य' उपन्यास के संवाद सरस, सार्थक प्रवाहपूर्ण, पात्रानुकूल और प्रभविष्णु हैं। संवादों की जीवंत्तता और सार्थकता सराहनीय है। वे कथा विस्तार में सहायक घटनाक्रम को उद्घाटित करने वाले पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाले और स्वाभाविकता से युक्त हैं। उदाहरणार्थ कथावाचक 'मैं' और निरंजन बाबू के संवाद दर्शनीय है।

"ख्याल कैसा"? मैंने पूछा।

"यहाँ सब लोग अपनी जिन्दगी के अन्तिम सिरे पर आते हैं.....तुम शुरू में ही आ गए।''

"शुरू तो मेरा बहुत पहले खत्म हो गया" मैंने कहा।

"क्या कहाँ? वह खड़े हो गए।

"मैंने कहा, सैंतीस साल कोई शुरुआत है?"

"कुछ लोगों की शुरुआत इसी उम्र के आस–पास हुई थी.....जीजस क्राइस्ट, गौतम बुद्ध, विटगे–श्टाईन...."

"कैसा चल रहा है तुम्हारा काम?"

"आपको तो मालूम है....."

"क्या हर रोज लिखवाते हैं?"

"नहीं, लिखवाते नहीं...." मैंने कहा, "जब मन करता है, तो.....मैं बाद में नोट कर लेता हूँ।"

"क्या यह अपनी इच्छा से करते हो या अपने शौक के लिए?"

"शुरू में कुछ भी नहीं या.....शुरू में जब यहाँ आया था, तो मिसेज मेहरा ने कहा था कि वह हर शाम मुझसे बातें करते हैं, मैं लिखता क्यों नहीं?.....इससे उनका वक्त भी कर जायेगा और मेरा मन भी बहल जायेगा।"

"तुम्हारा मन बहल जाता है?"

"एक रुटीन तो है.....उनके जाने के बाद अब उसे छोड़ना ठीक नहीं लगता।"[२५]

शिल्प विधन

समस्त प्राणी जगत में मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है जो अपनी देखी या सुनी बातों को वाणी द्वारा प्रकट करता हैं। रचनाकार इससे आगे जाकर जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि के रूप में इन विचारों एवं कल्पनाओं को विविध माध्यमों द्वारा शब्दबद्ध करता है। इस प्रस्तुतीकरण हेतु वह भाषागत विविध प्रयोगों, शब्दावलियों के साथ मुहावरों, कहावतों एवं अलौकिक प्रतिभा, अनुभव, विश्व निरीक्षण शक्ति संवेदनशीलता उसके जीवन की तरफ देखने के नजरिये के साथ जुड़े रहते हैं। इनके सहारे लेखक अपनी रचना उद्दिष्ट पूर्ति में सहायक बन जाती है। इन उपादानों को ही साहित्यिक भाषा में 'शिल्प–विधान' कहा जाता है।

निर्मल वर्मा एक ऐसे रचनाकार थे, जिन्होंने शिल्प के धरातल पर हिन्दी संसार को एक ऐसा कथा आयाम दिया, जिससे उनकी सर्जनात्मकता हमेशा चर्चा में रही उन्होंने कथानक के स्वरूप को पूर्ण रूप में बदल कर रख दिया और नूतन शिल्प का प्रयोग किया, जो पाश्चात्य धरातल पर प्रचलित रहा हो, लेकिन हिन्दी साहित्य में वह लुप्त था और उसे यहाँ स्थापित करने का कार्य निर्मल वर्मा ने किया। उनके शिल्पगत वैशिष्टय को निम्न धरातल पर देखा जा सकता है।

१. *कथानक की विरलता;* निर्मल वर्मा एक ऐसे उपन्यासकार रहे हैं जिन्होंने प्रेमचन्द्र से प्राप्त कथानक के वे सारे सूत्र तोड़ दिये जो भारतीय परम्परा में स्वीकृत रहे थे। इसे डॉ० नामवर सिंह कथानक का ह्रास स्वीकार करते हैं। डॉ० नामवर सिंह कहते हैं – "निर्मल वर्मा ने स्थूल यथार्थ की सीमापार करने की कौशिश की है। उन्होंने तात्कालिक वर्तमान का अतिक्रमण करना चाहा है.....यहाँ तक कि शब्द की अभेद दीवार को लांघकर शब्द के पहले के मौन–जगत के प्रवेश करने का भी प्रयत्न किया है। वहाँ जाकर प्रत्यक्ष इन्द्रिय बोध के द्वारा पहलुओं के मूल रूप को पकड़ने का साहस दिखाया है।"[२६] इसी तरह डॉ० धनंजय वर्मा ने उनकी कथात्मकता के बारे में लिखा है कि – "उनमें दृश्य जगत की घटनाओं का स्थान, मन: जगत के द्वन्द्व और चिन्तन ने ले लिया है।[२७]

कथानक का ह्रास ही निर्मल वर्मा के कथ्य की विरलता है जिसे अन्तिम अरण्य में गहराई से देखा जा सकता है। निर्मल वर्मा जैसे ही किसी पात्र की उपस्थिति से टकराते हैं, दूर तक फैली हुई उदासी के दृश्य बिम्ब सघन होकर कथाधारा में फैलने लगती है और कथानक उनके बीच में इस तरह विलीन हो जाता है कि उसे खोजना भी मुश्किल हो जाता है। यहाँ तक कि निर्मल वर्मा दृश्य बिम्बों के बीच अचानक उपदेश देने लगते हैं और लगता है कि वे एक कथाकार अनुभव करता है कि – कैसी विचित्र बात है, सुखी दिनों में हमें अनिष्ट की छाया सबसे साफ दिखाई देती है, जैसी हमें विश्वास न हों कि हम सुख के लिए बने हैं। हम उसे छूते हुए भी डरते हैं किस कहीं हमारे स्पर्श से वह मैला न हो जाए, और इस डर से उसे भी खो देते हैं, जो विधाता ने हमारे हिस्से के लिए रखा था दुख से बचना मुश्किल है, पर सुख को खो देना कितना आसान है – यह मैंने उन दिनों जाना था।[२८] कथाकार का यह उपदेशक रूप उस रूप उस समय का है,[२८] जब मेहरा साहब पहाड़ी ढलानों पर उसके साथ घूम रहे हैं और घूमते हुए जोरो से हँसते हैं, और उसके साथ मजाक करते हैं। इससे स्पष्ट है कि जिन्दगी जीने के ये सूत्र लेखक को उस हँसी के पार दु:खों के असीम संसार से प्राप्त हुए हैं जो 'अन्तिम अरण्य' के कथानायक में कहीं नहीं है। लेकिन निर्मल वर्मा ऐसे ही अपने पात्रों की कथनी कहते हैं। यह कथाहीनता ही उनके कथानक की विरलता प्रमाणित करती है।

२. *आत्मकथात्मकता;* निर्मल वर्मा ने अपने उपन्यासों के लेखन में अधिकांश आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया है। इस शैली में लेखक स्वयं पात्र या भोक्ता होता हैं वह जो कुछ अनुभव करता है, उसे पाठकों के सामने रखता है। 'अन्तिम अरण्य' की तो शुरुआत ही 'वह' और 'मैं' से होती है जैसे – वह आ रहे हैं मैं उन्हें दूर से देख सकता हूँ। वह अब पेड़ों के झुरमुट से बाहर निकल आये हैं और पगडंडी के उस अन्तिम सिरे पर चलने लगते हैं, जो 'उन्हीं कॉटेज' के पिछवाड़े

तक जाती है।[२९] इस तरह 'अन्तिम अरण्य' उपन्यास का प्रारम्भ होता है जिसके कथानायक 'मैं' मेहरा साहब जैसे उम्र के उस अन्तिम सिरे पर उसमें होकर रह गये हैं। जिनका अन्तिम संस्कार करना उसकी बड़ी जिम्मेदारी है। यही कारण है कि मेहरा साहब की मृत्यु के उपरान्त वह मेहरा साहब की अस्थियाँ लेकर पहाड़ी नदी 'सरपा' में प्रवाहित करने जाता है, और पाता है कि जैसे उसने अपनी जिन्दगी का बहुत बड़ा काम कर लिया है है जैसे – "पानी में खड़ा मैं दूर तक आता हुआ उन्हें देखता रहा ओर तब एक क्षण तक मुझे लगा जैसे मैं बहुत हल्का हो गया है। मानों मेरा कोई हिस्सा भी उनके साथ बह गया हो। लोटते हुए सिर्फ उनकी आवाज सुनाई दे रही थीं। वे मेरे साथ–साथ चल रही थीं।[३०] इस प्रकार 'अन्तिम अरण्य' की आत्मकथात्मकता पाठक को उस संवेदना में बाँध देती है, जिसमें कोई युवा अपने पूर्वज को नदी में बहाकर वापस आ रहा है।

३. *संवेदनशीलता;* निर्मल वर्मा के उपन्यासों के लेखन के सन्दर्भ उनके समकालीन लेखकों का कहना है कि निर्मल वर्मा भाषा के धरातल पर अपने निजी मुहावरे की खोज करते हैं। राजेन्द्र यादव कहते हैं कि – "भाषा के प्रति सबसे अधिक सजगता निर्मल जी में अपनी पीढ़ी में रही है, इसलिए उनके एक–एक वाक्य को उसी एकान्त और एकाग्रता के साथ पढ़ना पड़ता है।"[३१] मलयज ने भी इनके गद्य के विषय में लिखा है कि – "संवेदना के अनुरूप निर्मल का गद्य है – धूप छाँही गद्य। वे चिलचिलाती धूप के लिए 'तितरी' धूप लिखते हैं। 'तितरी' शब्द में चमक तो है पर दाह नहीं यह गद्य स्मृति की कविता का गद्य है, वर्तमान की आँच में तपता सपाट मैदानी गद्य नहीं।"[३२] इसी तरह ध्रवु शुक्ल ने लिखा है कि – "निर्मल वर्मा हिन्दी के प्रथम गद्य कवि हैं।"[३३] यह सत्य है कि निर्मल वर्मा एक ऐसे कथाकार है जिनका गद्य बहुत संवेदनशील गद्य है वे अपने गद्य को अपने द्वारा रचित शब्दों के माध्यम से अपने पात्रों के संसार में ले जाते हैं और उनकी उपस्थिति से सम्पूर्ण करते हैं। जिसमें काव्य का लालित्य है तो निबन्धों की वह वैचारिकता भी है। जब भी उनको कथानक से गुजरना होता है तब हम पाते हैं कि निर्मल वर्मा अपने अनुभवों, उपदेशों और संवेदनाओं के धागे पकड़कर कथा से बहुत दूर चले जाते हैं। डॉ० लेखक के स्वभाव उनकी कृति 'अन्तिम अरण्य' में भी दृष्टिगोचर होती है – "कच्ची रोशनी में भिगा हुआ दिन जब कोई अपना शहर छोड़कर चला जाता है तो मौसम पहले जैसा नहीं रहता, अभाव सा रिस्ता रहता है.....मैं चलता चलता रुक जाता जैसे कोई पीछे आ रहा है, पीछे मुड़कर देखता तो जानी– पहचानी इमारते मुझे अपने पीछे आती दिखाई देती. .....मैं रुक जाता तो वे भी रुक जाती, अपनी खिड़कियों के पीछे से मुझे घूरती हुई।"[३४] चीड़ को पीली, पकी सुइयाँ, हवा में बहते हुए एक कब्र से दूसरी तरफ उड़ जाती थी। मैं कुछ देर वहीं किसी अनाम पत्थर के ऊपर उसी भाँति घास पर बैठा रहा, शहर को सुनता रहा। वह किसी पाताल लोक से उठता हुआ ऊपर आ रहा था।"[३५] यह सच है जब कोई मनुष्य सालों तक अपने विगत जिये गये शहर को छोड़कर किसी अन्य शहर में जायेगा तो उसे पिछले शहर के विगत दिन, महीने, साल, वहाँ के लोग, निकट सम्बन्धी और घटनाएँ अवश्य याद आयेगीं या हो सकता है उसे नया शहर रास ही न आये और वह पुराने शहर में ही वापस जाना चाहे। इन सारी स्थितियों से गुजरते हुए कथाकर उन गुजरते हुए दिनों, सालों में उसके नजदीक आने वाले पात्रों की कहानी कह सकता था। उनके जीवन के एक–एक पल को अंकित कर सकता था और यह उपन्यास कुछ और रुचिकर हो जाता या बोझिल भी हो सकता था। लेकिन इन दोनों स्थितियों से बचते हुए लेखक ने संवेदनाओं का सहारा लेकर उस कथानक को शहर और इमारतों के द्वारा इस तरह व्यक्त किया है जैसे कथानायक इस शहर में जाकर भी इसे कभी अपने से अलग नहीं कर पायेगा।

४. *लयात्मकता;* निर्मल वर्मा के गद्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है उसकी लयात्मकता जैसे काव्य में एक लय होती है, और यही लय पाठक को एक सरल कथन के विपरीत अपनी चमत्कृति से मोह लेती है। निर्मल वर्मा अपनी लय से पाठकों को चमत्कृत कर उन्हें अपनी प्रबुद्ध शैली में उतार देते हैं। यहाँ तक कि उनकी रचनाओं में चित्रित उदासी आगे बढ़कर रोशनियाँ और नीले आलोक में खत्म होती हैं। उनकी इस लयात्मकता की ही परिणति है कि जिन्दगी में अनेक दु:खों को झेलते हुए उनके पात्र सुखों की ओर वापस लौट आते हैं और उनके सामने ऐसे बहुत से सन्दर्भ खड़े हो जाते हैं जो उन्हें जीने के लिए प्रेरित करते हैं। लेखक अवसर लगते ही शब्दों की लय का एक ऐसा संसार उपस्थित करता है कि उससे होकर न केवल पाठक सहानुभूति रखता है, बल्कि लगातार दु:ख और निराशा में जीने वाला वह पात्र भी अंतत: सुख की मंजिल प्राप्त कर लेता है जैसे– "मैं उन्हें देख रहा था, दाढ़ी के बाल कुछ और सफेद हो गये थे, गले के नीचे माँस की सलवटें

और फैल गई जान पड़ती। पर आँखों में एक अजीब सी जीवंतता थी, जैसे भूतलियों की राख के भीतर कोई ज्वर की चिनगारियाँ बची रह जाती।"[३६]

यह विदित हैं कि यहाँ पर मेहरा साहब धीरे–धीरे उम्र के अन्तिम पड़ाव पर पहुँच रहे हैं अर्थात् मृत्यु के पास ही हैं। लेकिन जहाँ पर वे खड़े हैं वहाँ से मृत्यु का एक लम्बा अन्तराल है और उस अन्तराल को लेकर अपने शब्दों की लय बाँधकर बहुत कम शब्दों में वहाँ तक पहुँचता है। लेकिन तब भी उससे राख के भीतर एक चिनगारी के बचे रहने की सुखानुभूति दे जाता है। यह सुखानुभूति पाठक की सबसे बड़ी उपलब्धि है। कोई अन्य लेखक होता तो इस परिप्रेक्ष्य में मृत्यु की ओर जाते मेहरा साहब के वर्तमान को विगत और आगत की घटनाओं में ले जाकर कथानक का अनंत विस्तार दे सकता था लेकिन निर्मल वर्मा ने इन शब्दों की लयात्मकता जिन सीमित शब्दों में, जिस संवेदना से इन क्षणों में सच्चाई निचोड़ लेता है, वह स्वयं ही बहुत महत्वपूर्ण है।

५. *शब्द भंडार;* शब्द रचनाकार जीवन के गहरे अनुभवों के रूप में उसके मानस में निबद्ध रहते हैं जब शब्द स्वयं अनुभूति के सामने आ खड़े हो जाते हैं और रचनाकार अनजाने में ही उनका प्रयोग कर जाता है तात्पर्य यह है कि अनुभूति स्वयं शब्द मय हो जाती है और शब्द स्वयं अनुभूतिमय हो जाते हैं। यही रचनाकार की सफलता का रहस्य है। यदि किसी कवि को अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए शब्दों की खोज करनी पड़े तो उसमें स्वाभाविकता एवं सहजता नहीं आती। निर्मल वर्मा भी इस भाषा का प्रयोग करते हैं जिसमें जन–साधारण सहजता से अपनी अभिव्यक्ति करता है। इसी कारण उन्होंने अंग्रेजी, उर्दू शब्दों से परहेज नहीं किया।

(क) अंग्रेजी शब्द

निर्मल वर्मा ने काफी समय विदेश में व्यतीत किया। इसीलिए उनकी भाषा में अंग्रेजी शब्दों को प्रयोग मिलता है। अंग्रेजी के साधारण शब्द जो आम बोल चाल की भाषा में प्रयुक्त होते हैं निर्मल वर्मा के पात्र सहजता से प्रयोग करते हैं :

शब्द	–	पृष्ठ	शब्द	–	पृष्ठ
कॉटेज	–	०९	सीरियस	–	९५
लैंडस्केप	–	१०	सब्जेक्ट	–	९५
नेगेटिव	–	१०	यूनिवर्सिटी	–	९५
लैंडस्केप	–	१३	मजिस्ट्रेट	–	१०१
एक्टर	–	१३	बस स्टैण्ड	–	१२३
स्टेशन	–	१६	प्राइवेट	–	१४०
नोट बुक	–	१६	कम्यूनिटी सेन्टर	–	१५०
अरिस्टोक्रेट	–	२६	टाइटिल	–	१५४
सिमिट्री	–	३९	लाइब्रेरी	–	१५५
कैन्टीन	–	४३	ड्रिंक	–	१६५
रजिस्टर्ड	–	४३	क्लब	–	१६५
वेटिंग रूम	–	७३	पोस्टमैन	–	१६७
प्रेस्क्रिप्शन	–	७५	टेलीग्राम	–	१६७
एक्सरे	–	७५	ब्लड प्रेशर	–	१७३
वार्ड रोब	–	७९	एस्ट्रानामी	–	१७८
बाथ रूप	–	७९	आब्टर्वेटरी	–	१७८
अण्डर बियर	–	७९	टेलीस्कोप	–	१७८
ट्रेनिंग	–	८२	फिलॉसफी	–	१८२
गवर्नेस	–	८२	लैम्प	–	१९९
ट्रेनर	–	८२	सरप्राइज	–	२००
मिस्ट्रेस	–	८२	एटलस	–	२१४
सीजन	–	८९	क्लीनिक	–	२१४

(ख) अंग्रेजी वाक्य

निर्मल वर्मा ने अंग्रेजी शब्दों के साथ–साथ अंग्रेजी वाक्यों का भी प्रयोग किया है :

वाक्य	–	पृष्ठ
प्लीज डोंट डिस्टर्ब	–	०९
कम वन। कम आल	–	०९
प्लीज कम दिस इवनिंग। ए सरप्राइज इज वेटिंग फॉर यू	–	२३
वाटर ऑफ लाइफ	–	२८
सेकेंड हैंड बुक सेलर	–	३८
Confessions of a country priest	–	५०
Rules and Regulation	-	७३
Please Bear with us	-	७३
वैली आफ डैड लेटर्स	–	१५२

(ग) संस्कृत शब्द

निर्मल वर्मा ने 'अन्तिम अरण्य' उपन्यास में संस्कृत शब्दों का भी प्रयोग किया है :

शब्द	–	पृष्ठ
विगत	–	१०
नीरव	–	११
मृत्यु	–	११
वार्तालाप	–	१५३
ध्यानावस्थित	–	२०२
प्राचीन	–	२०३
आदिम	–	२७५
अस्वस्थ	–	२७६

(घ) उर्दू शब्द

'अन्तिम अरण्य' उपन्यास में उर्दू शब्दों की भी भरमार है जैसे :

शब्द	–	पृष्ठ
शक्की	–	१०
मंजिल	–	११
मुफस्सिल	–	१५
खौफनाक	–	२०
शुरु	–	२२
मुसाफिर	–	२३
कब्र	–	२६
कागज	–	२७
गुजरते हुए हुए	–	२९
उम्र	–	३०
मुकम्मल	–	३३

दिलचस्पी	–	३८
तकलीफ	–	४५
गमगीन	–	६७

(घ) साधरण बोलचाल शब्दावली

निर्मल वर्मा ने उपन्यास 'अन्तिम अरण्य' में जहाँ अंग्रेजी, उर्दू एवं संस्कृत शब्दों प्रयोग दृष्टिगोचर होता है वहाँ साधारण बोलचाल शब्दावली का प्रयोग बेधड़क किया है :

शब्द	–	पृष्ठ
टुकुर–टुकुर	–	१३
धुंधलका	–	२१
इक्का–दुक्का	–	२५
किरिच	–	४७
गुदमा	–	५५
गरमाई	–	५५
ठिठुरन	–	६२
धुकधड़ी	–	६४
भूतैली	–	६५
झाड़–झंकाड़	–	७२
ठिठका	–	७२
जोरिया	–	७४
कोठरी	–	८२
गूदड़	–	१०४
देहरी	–	१२२
डंगर	–	१३३

(च) ध्वनियुक्त शब्द

वातावरण को ध्वनियुक्त बनाने हेतु निर्मल वर्मा के उपन्यास 'अन्तिम अरण्य' में ध्वनियुक्त शब्द हैं :

शब्द	–	पृष्ठ	शब्द	–	पृष्ठ
धड़धड़ाती	–	१०	झिपझिपाना	–	९२
खिलखिलाना	–	११	गड़गड़ाहट	–	९३
खर–खर	–	२१	थप–थप	–	९८
किरिच–किरिच–किरिच	–	४१	छप–छप	–	१०४
खटखटाने	–	४४	टिप–टिप–टिप	–	१०७
सरसराहट	–	४७	फरफराना	–	१२४
खड़खड़ाने	–	६२	किट–किट	–	१३४
फड़फड़ाहट	–	६६			
मिमियाती	–	६९			
गुनगुनाहट	–	७६			
धड़कता	–	७७			
भडभडाकर	–	८६			
हिनहिनाना	–	८७			
खनखनाहट	–	९१			

(छ) मुहावरें

निर्मल वर्मा ने मुहावरों का प्रयोग भाषा को सहज एवं सरल बनाने के लिए किया है :

मुहावरा	—	पृष्ठ
आँख मिचौनी खेलना	—	१०
बाँछे खिलना	—	५९
ध्यान भंग होना	—	६४
सांप फूत्कार	—	७७
कुलाँचे मारना	—	८१
हकबका सा रहना	—	८२
चमक आना	—	८२
झेंप मिटाना	—	८२
मूल सा दर्द	—	१०५
हंसी के झरोखे	—	१२१
धूल झोंक कर	—	१२९
आँख बचाकर	—	१२९
पीछा छुड़ाना	—	१२९
हाथ खून से रंगे	—	१६०
बाट जोहना	—	२१२
आँखों से औझल	—	२१३

इस प्रकार निर्मल वर्मा ने 'अन्तिम अरण्य' उपन्यास को शिल्प विधान के अभिनव प्रयोगों से प्रवहमान बनाया।

'अन्तिम अरण्य' उपन्यास निर्मल वर्मा के अपने पूववर्ती उपन्यासों की तुलना में अलग कोटि का उपन्यास है, जो जीवन वृद्धावस्था और मृत्यु जैसे दार्शनिक विषय से भरपूर हैं। मेहरा साहब इस उपन्यास के प्रधान पात्र हैं और उनकी संवेदनाओं का अंकन ही इस उपन्यास का मूल विषय है। यह उपन्यास इस समय का गवाह है जिस समय हममें कोई उम्मीद बची नहीं रहती। यह जीवन की अन्तिम बेला का दर्शन है। जो आशा से अधिक निराशा देता है और जीवन से अधिक मौत की सोचता है तथा सरसता की अपेक्षा नीरसता प्रदान करता है और अपने होने से अधिक न होने का बोध कराता है। जीवन में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास जैसे चार आश्रमों की कल्पना भारतीय दर्शन में उपलब्ध हैं। किन्तु 'अन्तिम अरण्य' को पाँचवे आश्रम की परिणति कहना उचित होगा। अंतत: कहना होगा कि 'अन्तिम अरण्य' में कथात्मकता से अधिक विचारात्मकता के दर्शन होते हैं और यह विचारात्मकता पश्चिमी सोच की देन है। जीवन के अन्तिम दिनों में लिखे गये इस उपन्यास में लेखक ने वृद्धावस्था, जीवन और मृत्यु को अपने चिन्तन का विषय बनाकर यह बताने का प्रयास किया है कि हम सबको इस अवस्था से गुजरना है।

सन्दर्भ

[१]राणा, मंजुला —*दसवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिक सौहार्द,* वाणी प्रकाशन, २००८, पृष्ठ संख्या ४३
[२]वर्मा, निर्मल — *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली — दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या १९
[३]वर्मा, निर्मल — *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली — दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या १३४
[४]वर्मा, निर्मल — *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली — दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या ५९
[५]वर्मा, निर्मल — *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली — दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या १२०
[६]वर्मा, निर्मल — *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली — दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या ५६
[७]वर्मा, निर्मल — *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली — दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या ३१
[८]वर्मा, निर्मल — *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली — दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या ४३
[९]वर्मा, निर्मल — *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली — दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या ७७

[१०]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या १३३
[११]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या ५७
[१२]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'* ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या २०
[१३]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या २०
[१४]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या २१३
[१५]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'* ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या २३
[१६]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'* ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या ३२
[१७]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या ८२
[१८]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या ३३
[१९]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या ६५
[२०]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या १७९
[२१]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या ४३–४४
[२२]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या २९
[२३]डॉ० त्रिभुवन –*हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग,* पृष्ठ संख्या २५८
[२४]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या ८९
[२५]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या ३४
[२६]सिंह, नामवर –*जलती झाड़ी*
[२७]वर्मा, निर्मल –कथाकार नरेन्द्र छट्टवाल, पृष्ठ संख्या ६२
[२८]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या १००
[२९]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या ०९
[३०]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या २१४
[३१]*आलोचना :* जुलाई – सितम्बर अंक–२००४, पृष्ठ संख्या ५६
[३२]वर्मा, निर्मल –*मलमज्र'*, पृष्ठ संख्या १२८
[३३]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या १७९
[३४]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या १३३
[३५]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या १२४
[३६]वर्मा, निर्मल – *'अन्तिम अरण्य'*, ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली – दूसरा संस्करण, २००७, पृष्ठ संख्या ६७

प्रकाशन

अन्य एम.पी.ए.एस.वी.ओ. पत्रिकाएँ

सार्क अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका

www.anvikshikijournal.com

अन्य सहसंयोजन

एशियन जर्नल ऑफ मार्डन एण्ड आयुर्वेदिक मेडिकल साइंस

अर्द्धवार्षिक पत्रिका

www.ajmams.com

IJRA

www.anvikshikijournal.com

ISSN 0973-9777

09739777

₹ 1300/-